

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥



बीराशिर्षों द्वारा लिखित आत्मक पुस्तिका "नहले पर बहले"

का

सूँद मोन्द उच्चर :

द्वारा

शान्ति प्रकाश शान्तिवार्ध महारथी

—प्रकाशक—

जन-ज्ञान-प्रकाशन नई दिल्ली-४

दहला पागल हो गया....

दौराधिक स्वामी केशवपुरी के अनर्गल प्रलाप

‘नहले पर दहला’

अथ

युक्तियुक्त उत्तर

लेखक :

शास्त्रार्थ बहारवी पं० शान्तिप्रकाश जी महामहोपाध्याय

भूमिका लेखक :

श्री पं० शिवकुमार शास्त्री, काब्यभाष्यकारकुलीचं, महामहोपाध्याय, संसद् सदस्य,

अध्यक्ष

आर्य प्रतिनिधि मन्त्रा,

उत्तरप्रदेश

हम खींचा करेंगे !!

आर्यसमाज साक्षरता के उत्सव पर जब पं० आशिषकाश जी ने नुबे 'नहले घर दहला' पुस्तक दिखाई, तो मेरे मन की भारी ठेस पहुँची। अपने कं सनातनधर्मी कहने वाले बान्धुओं की कृतधनता देख हृदय रो उठा। वस्तुतः युग प्रवर्तक देव दयानन्द की शालियाँ देकर स्वाधी केहरवपुरी ने आर्यशास्त्र की महान् गौरव-परम्परा पर कुहराबात किया है।

हम इसे एक पागल का प्रलाप भी समझ लेते किन्तु इसमें जब स्वामी निरंजनदेव तीर्थ (पुरी के गद्दीधारी संकराचार्य) का आशीर्वाद भी पड़ा तो इसे मुनिवोदित कार्य समझने पर हर्ष बाध्य होना पड़ा। ये गद्दी संकराचार्य हैं जिनकी बुद्धिमत्ता से गो-रक्षा आन्दोलन अवकल हुआ।

जिस ऋषि दयानन्द ने सरो भारत को पुनः जीवन दिया, जिसने आर्य जाति की विषमियों से रक्षा की, जिसने ग्रन्थकार में प्रकाश दिखा हमें चलना सिखाया, उस महापुरुष पर कीचड़ उछालत स्वाधी केहरवपुरी और श्री निरंजन देव तीर्थ को क्या मिलता, यह तो ये ही जानें, हाँ इससे यह स्पष्ट हो गया कि भारत के दुश्मन अभी समाप्त नहीं हुए।

ऋषि दयानन्द की विपत्ति क्षुब्ध की-सी है, उन पर बूल डालने वाले समझ लें कि वे अपनी इन छोटी २ हुरकतों से ऋषि को नहीं, अपने को ही गिरा रहे हैं। संसार के सभी महापुरुषों ने एक स्वर से ऋषि की श्रद्धांजलियाँ अर्पित कर अपने को धन्य माना है, आजका यह कुहलव कितना जघन्य है, यह एकान्त में बैठ स्वयं सोचिए।

विचारिए तो सही कि एक महापुरुष को, ऐसे महापुरुष की जिसके कारण आज राम, कृष्ण, वेदशास्त्र का नाम अविच्छिन्न है, इस तरह अपमान करने का पाप कर अपने अपने को कहाँ पहुँचाया है।

हम हरम पिता परमात्मा से आपकी सद्बुद्धि के लिए चार्जवा कर रहे हैं ।
प्रभु आपको ऐसी प्रेरणा दे कि आप भूला कार्य छोड़कर अपने वेद की राह
पर चल सकें ।

ऐसे में जब किसी-दुष्टमन-अन्युचित हिन्दु (कार्य) जाति की समझ
करने में लगे हैं, आपने जो यह किया, इतिहास आपको क्षमा न करेगा ।
प्रभु कृपा करें कि आप सभी पौराणिक धर्मवेत्ता वेदवादन और कार्य
परम्पराओं की रक्षा के लिए महर्षि के सत्य कार्य पर चल सकें—

हम हम दिन की प्रतीक्षा करेंगे ।

—मारीचक भाव

संसार में वेद का संदेश फैलाने और वैदिक साहित्य प्रकाशन के लिए

१. जन-ज्ञान (मासिक) के सफल होने ।

मासिक मूल्य १०) : मासिक १२१)

मनुना वच लिखकर बिना मूल्य संग्रह

२. वैदिक साहित्य व कार्य की के अन्य प्रकाशन हेतु व ईसापूर्व के
प्रवाह को रोकने के लिए अन्तर्जातीयक सहयोग के लिए ।

संस्थापक :

जन-ज्ञान (मासिक)

१३६७, हरमार्गमार्ग मार्ग, करील बाल, नई दिल्ली—२

स्मरण कराने वाले के लक्ष्य का ऐतिहासिक स्वरूप प्रत्यक्ष है और इसकी स्थापना होनी चाहिए । वही सत्य ईश्वरत्व के लिए है । ईश्वरत्व का मुख्य संबंध ईश्वर से पिता का सम्बन्ध और इसी आधार पर मानव समाज में भातृभाव की (Fraternalism of God and brotherhood of men) स्थापना है । इसका भी विवेचन इसी कि इस संबंध की सत्ता वेद में है — प्रकटा नहीं । ही केव में इसके प्रतिपादक मान्य भी बहुत बड़ी संख्या में है । जिसमें यजुर्वेद की पिता, न केवल पिता मन्त्रिष्ठ माता भी कहा गया है । एवं हि का पिता सभी एवं माता सत्यकतो अनुविद्य और अग्नेयस्यो कर्मविद्याम तुम मे न कोई छोटा है और न कोई बड़ा । तुम सभी समान और माई-माई हो । तो पता चला कि यह संहिता भी कोई नया नहीं है । हाँ इस विस्तृत उपाय की जिसने सभी स्मरण कराया हमें उसका स्वरूप होना चाहिए ।

इस प्रकार सारे जल-मलामारी का विनियोजन करने की ध्यान पार्श्विका के समस्त पवित्र संदेश केन्द्र में हैं जिनके आधार पर उन्नत वर्गों का आधुनिक रूप है। हाँ, केन्द्र के नाम पर, जिसकी केन्द्र सबसे कहना है—महान की सीमा नहीं चर्चें कहते हैं—इसका अर्थान होना चाहिए। वह वह वा कृषि वसाकर्म का संदेश और इसी के लिए के आजीवन अर्थान करते रहे।

शुद्धि से सततपूर्वक कहता कि कोई नया राज और सम्प्रदाय चलाना मुझे पसन्द नहीं है। अन्तिम में उसी सनातन धर्म को मानता हूँ। जिसे बहुत से लेकर जीमिनि शुद्धि सर्वज्ञ सब मानते और प्रचार करते पाते हैं।

अतः क्षुधि द्वारा स्थापित कार्यसञ्चालन कोई धर्म नहीं है—अनिष्टु वह विश्व धर्म की आवश्यकता है—बहु समय अन्यायन वैश्व धर्म है। देखता वह चाहिये कि कलम सनातन धर्मात् क्या निकले वाला धर्म कीकलम हो सकता है ? तो इसकी परिभाषा केव ने लक्ष्य की है कि "समाधानमैवमात्रुष्टावः स्वात् पुनर्लभः।" धर्मात् सनातन वह हो सकता है जो क्षुष्टि के धारण के हो तथा वर्तमान की सभी समस्याओं के समाधान की क्षमता रखता हो जो धर्म वर्तमान समय की समस्याओं के समाधान की क्षमता नहीं रखता उसे धर्म के रूप में जीते या कोई धर्माकार नहीं है।

आदि श्वानन्द के कथन में हमारे तथाकथित समाज सब की चीजों की समस्या ही गयी थी । एक ही कार्य के होकर भी अनेक प्रकार के तरीकों की कल्पना करके अपने देश की उत्कृष्ट और हमारे के समाज देश को विकृत सिद्ध करने में अपनी समझौती नीयत और शक्ति का प्रयोग कर रहे

वे । वारा पीराशिक ताद्वित्य इस तन्त्र का साक्षी है ।

शुचि भवानन्द ने पहला मोर्चा इसीके विरुद्ध लगाया और मुत्तियूज तथा भवदारवाह का सम्मान करके वेद के आधार पर एक ईश्वर को ही उपासनेके बताया । यदि वेदोक्त ईश्वर के उपासक धर्म (हिन्दु) लोग रहे होते तो यह १००० वर्ष में उनकी ऐसी पुनर्जि न हुई होती । सीमनाथ ने मन्दिर को महामुद्र इस प्रकार उलट करके अनुत्पन्न आश्रम न बना बना होता यदि जड़पुजा करते-करते इसारी बुद्धि बढ़ न होनी होती । आश्रमता को देख कर सीमनाथ जी के सहारे बैठे रहे कि कहीं शत्रु को मारकर मना देना : राजा बाहुर को केवाट मन्दिर के भग्ने को छुना हुआ देखकर मैदान के न भाव लगी होती यदि वे वहाँ के स्वयम्भार में भग्नी न होती । इन कारणों से शुचि ने मुत्तियूजा का सम्मान किया ।

इसी प्रकार कर्तुम्भशतका विरुद्ध होकर धार्मिकता दुकड़ी में बर रही । एक विवाह और व्यवस्थित मन्त्र दूरी-दूरी इतों का डेर बनकर रह गया । इस पर भी मुरा यह कि वेदों के डेकेदार पर्वोपार्थ कहाने वाले वेदों के विपरीत व्यवस्था दे रहे थे । वेद अथर्वविवाह कन्याश्रीम् : वसुः । स्पष्ट वृद्ध और घटि वृद्ध को भी वेद पढ़ने का अधिकार दे रहा है । किन्तु वेद मूलक होने का धर्मदार कर्तुम्भ वर्ष का क्या स्वयम्भु हो गया था । अमृतानन्दमन्त्रातिशेधात् स्फुटेश्च । वेदान्त दर्शन के इस मूल के आध्य ज्ञान में भास शङ्कराचार्य लिखते हैं—समाप्त केवमुपश्रुतस्वयमुक्तुषां श्रीशक्तिपूर्णाभुम्भारली विष्णुदेवः भारते मरीर केवः । धर्मात् यदि वेद को वृद्ध गुणके ही राग और शास से उनके कानों के वेद मरते और वेदमन्त्रों का उच्चारण करे तो जीव काटने और वेद के अनुसार साधन करे तो मरीर और वे ।

धर्म केवल परमेश्वर का शासन माने जाना गया । धर्म के नाम पर जो काम होते थे उनका वर्तमान से और इस लोकसे कोई सम्बन्ध नहीं था । होता भी कैसे ? क्योंकि इस लोक को तो मानते ही मिथ्या थे । फिर मिथ्या वस्तु की रक्षा और रक्षण का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता । हिन्दू धर्म में के ईसाई और मुसलमान बनते जा रहे थे और किसी को कोई चिन्ता नहीं थी ।

सन् १८८१ में भारत में हिन्दुओं की संख्या कुल आबादी का ४४.८ प्रतिशत थी । सन् १८९१ में ७१.६ प्रतिशत रह गई सन् १९२१ में ६७.७ प्रतिशत रही । इस प्रकार इन ३० वर्षों में हिन्दुओं की संख्या लगभग ७ प्रतिशत बढ़ गई । यदि इसी हिसाब से हिन्दु बढ़ते चले जाते तो ४६ बार

की मर्दुम दुमारी में हिन्दु संसार के गण्य हो जाते । यह १९११ की जन-संख्या की रिपोर्ट के अनुसार भारत में कुल हिन्दु २१ करोड़ ७५ लाख ७६ हजार ५६२ थे । वहीं वर्ष १९२१ में २६ करोड़ ५७ लाख ३४ हजार ३८१ रह गये । यहाँ से ५५ लाख बढ़ गये ।

इन्हीं १० वर्षों में भारत के मुसलमान ५ करोड़ १५ लाख में बढ़कर ६ करोड़ ८१ लाख हो गये और १९७१ में ७ करोड़ से भी अधिक होगये । इसी प्रकार ईसाई वर्ष १९११ में धारे भारत में कुल १८ लाख थे । यह १९२१ में ४७५ लाख हुए और वर्ष ३१ में ५५ लाख से भी अधिक होगये । केवल संख्या प्रान्त में ही नहीं ईसाइयों की संख्या यह १८८१ में केवल १,८७ थी । वहीं वर्ष २१ में ३ लाख ४७ हजार ४६२ होगई । सरकारी रिपोर्ट के अनुसार १४४ मनुष्य प्रतिदिन हिन्दुओं में से निकलकर ईसाई बनते थे ।

यह बताइये श्री स्वामी निराजनदेवकी महाराज ! हिन्दुधर्म की रक्षा केतवुरी और साधनधार्मिकी धारणा मान कर रहे हैं अपना धार्मिक-समाज कर रहा है । आपकी हामल ही यह थी कि कहीं-कहीं वाली बनिवार में भी दारासिकोह के साथ एक बार वाली गया था—काशी के पण्डितों से पूछा—साथ जिस धर्म की मानते हैं, वह क्या है ? पण्डितों ने उत्तर दिया—वह सर्वोच्च धर्म है । बनिवार ने दूसरा प्रश्न किया—किस का साथ दूत धर्म की दीक्षा बुद्धि से सकते हैं ? पण्डितों ने उत्तर दिया—वहीं, आपके विश्व वहीं धर्म ठीक है, जो आप मानते हैं ।

तो आपि दयानन्द से पूर्व सनातन धर्म का यह प्रकेतन करीर निरनेष्ट कहा हुआ था । धार्मिकभाव के प्रचार में इसमें सति उत्पन्न की और उसका प्रसारण काशी की मित्र परिषद् के १० प्रस्ताव हैं जो वर्ष ४७ में नवाबाली के अपने के समय पास किये थे । उनमें से अन्तिम प्रस्ताव यह था कि नवाबाली में बलपूर्वक विष हिन्दु स्त्री-पुरुषों को सुसमाज बनाया गया है—वे अपनी दृष्टि से नहीं बने । उनमें उनका कोई दोष नहीं है । अतः उन्हें हिन्दु धर्म में पुनः माने के लिए धार्मिकभाव की बुद्धि प्रकिया बहुत लम्बी है । अतः हम आश्चर्य से हैं कि संसाधन विकसित कर और संत बना कर ही उन्हें बुद्ध कर दिया जाये । वह है—जानू स्वामी दयानन्द का आपि साथ उनका नाम में धारणा न हो । आपि दयानन्द की तरफ में आये बिना आप की बुनिया में साथ एक दिन भी बीतित नहीं रह सकते । आपके सनातन धर्म का विस्तृत स्वरूप ही यह है कि एक संकट १८६० के आनिधन बाद में काशी में

एक बाइबल सम्मेलन हुआ। इसकी बैठकें सात दिन तक होती रहीं। सम्मेलनका ३०० परिचरों ने भाग लिया और विचार विनिमय किया। बड़े संघर्ष के पश्चात् इस सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि रजोवर्धन के पश्चात् कन्या को कुचलील प्राप्त होता है और प्राचलित से उसकी निवृत्ति नहीं होती। अतः रजोवर्धन के पश्चात् कन्यादान अवश्य है। (२) उपजातिवर्गों में विवाह नहीं करना चाहिए। (३) सुखसमागों और धनधनों की प्रशंसा कम से है। और बात करने दीजिए सम्प्रदाय को ही अपनी साम्प्रदायिकता के संसार में फैलाने चाहिए। साफकी सब छोटे-बड़े का भाव रहा सब जावेगा। कल करती रहना के सम्मेलन में आपने बहुतों के चेहरे देखे हुए थे—भिर वक्ताओं की जीतापीली करते थिरे।

इसलिए भी विचारजन देव की चेतिसे और हिन्दुओं की अवस्था पर रखा कीजिये। केवलदेव पुत्री के संग्रह "बहुते पर रहता" पर अपना आजीविक देकर आपने अपने स्तर को बहुत नीचा गिरा दिया है। इस पक्षकी के देव की भाव अपने आजीविक के इकना चाहते हैं।

बात क्या थी? जिसका आपने बताया पश्चात्, वहीं न कि आपने समाज के काही के साक्ष्यार्थ को १०० वर्षों की गये से और मार्क्सवाद उसकी स्मरण करके मार्क्सवाद में एक चेतना लाया बाइबल का। यदि साक्ष्यार्थ चर्चा करके मार्क्सवाद के लिए होती मार्क्सवाद मरा इसका स्मरण करता रहा है और सब की करता है। आपने साक्ष्यार्थ के लिए भी की निम्नवत् दिया मार्क्सवाद ने उसे बहुत स्वीकार किया। आप मार्क्सवाद के सम्मान में आपके की लेकर नहीं थे। एक तीव्र स्थाय एक हाईमूल का सुझाव आपने दिया मार्क्सवाद ने वह भी स्वीकार कर लिया। आपने फिर उसके लिए भी बहुतों बनाये और उसे ठाक दिया। सन्त में अतिरिक्त दिन जबकि मार्क्सवाद के विचार में एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर बहुत से लोग उसकी सम्पत्ति के लिए गये हुए थे तथा पश्चात् में साक्ष्यार्थ की संस्था की तैयारी हो रही थी—तब आप जीवित दिया निश्चय और पूर्व सुझाव के उपयोग करते हुए मार्क्सवाद के सम्मान में गये। यदि आपके मन में साक्ष्यार्थ की भी तो तीन दिन तक क्यों क्यों भौंकते रहे? मार्क्सवाद ने फिर भी आपकी पुनीती को स्वीकार किया। किन्तु परिस्थिति की सम्पीरता को देखकर अधिकारियों ने उसको अनुमति नहीं दी और सभा समाप्ति की घोषणा

करती । अब कोई बताये इसमें मार्क्सवाद का क्या दोष है ?

इस के ठेकेदारों ! धर्म सम्प्रदाय और संस्कृति जिसने सतरे में धान है उसने संकट में पहले कभी नहीं की । हमारे साहित्य बग़ारों को आकाशवाणी ने धान लगा दी तो हमारे गेवासी धूर्तों ने वेद और शास्त्रों को काँट करके और धार्मिक शिक्षा देकर उसकी रक्षा की । किन्तु धान की विवाह शिक्षा ने धर्म के प्रति धडा के संकुर ही नष्ट कर दिये । धान के द्विपेदी, त्रिपेदी और चतुर्वेदी बग़ारों के घरों में वे कार्मिक के संकुर हैं जिन्होंने वेद कभी देखे नहीं और न देखने की मन में उत्कंठा है । क्या पढ़ा-लिखा सुश्रममाण कोई आपकी ऐसा मिलेगा जिसने कुरान न देखी हो और क्या पढ़ा लिखा ईसाई आपकी ऐसा मिलेगा जिसने बाइबिल न देखी हो किन्तु हिन्दू आपकी ऐसे समाने लोगों मिल जायेंगे । अतः इस संस्कृति के जीवन का एक और एक ही मार्ग है और वह है ऋषि समाजद्वारा समुद्भूत वैदिक धर्म का विशुद्ध स्वल्प । मैं प० सान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी व जन-ज्ञान-प्रकाशन को बधाई देता हूँ कि उन्होंने इस प्रकार की उन्मुख विचार वात्सा का बहुत समर्थ भाषा में परिहार किया है । इसे पढ़कर बुद्धि जीवियों को कुछ तो सन्तोष होना कि अन्ततः धार्मिक सेव में भी कुछ विचारशील व्यक्ति हैं जो कठमुन्तेपने की खोजकर उहीनोद्वारा तथ्य संकलन करके पाठकों के चिन्तन के लिए कुछ सामग्री उपस्थित करते हैं ।

धान आवश्यकता है कि हम सत्य के प्रकाश में असत्य के त्याग के लिए सदा उत्तर रहें । असत्य का प्रक्षुण तो सर्वनाश की ही धामनित कर सकता है ।

५. ६. ७०

—शिव कुमार शास्त्री (संसद सदस्य)
प्रधान, धर्म प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश
५, मोरबाई मार्ग, लखनऊ ।

नहले पर दहले का यथाथ उत्तर

सनातन धर्म के एक महरेदार स्वामी केदार पुरी के ४८ पृष्ठ की एक पुस्तिका प्रकाशित करके कार्यसमाज और श्रीविद्यमानन्द पर जारी विषमता बढ़ा है। इस पुस्तक का प्रकाशन स्वयं "मोर्चा समातन धर्म का, हरिश्चन्द्र का जीवन, वैराग्य, काशी है।" यह मोर्चा कार्यसमाज के सताब्दी समारोह के विरुद्ध लगाया गया और हुस्नइबाजी से काम लेकर कार्यसमाज सताब्दी समारोह के बीच पर कब्जा करने का प्रयत्न किया गया तथा कार्यसमाज के महोत्सव में "जयजय राम" का कोर्तन शुरू करके सताब्दी समारोह की कार्यवाही में अनुचित व्यवहार किया गया। तब पुलिस ने हुस्नइबाजी को धक्केबाजी की समाप्त किया। इसका अविश्वसनीय स्पष्ट है कि पौराणिक धर्म से ही वर्षों पूर्व श्रीविद्यमानन्द को मुक्तिपूजा के विधान में एक वेद मंत्र भी न दिया गये और हुस्नइबाजी से श्रीवि पर भिट्टी कंकरादि फेंकने शुरू कर दिये तथा अपनी जीत के गीत गाते हुए जाय गये। आज १०० वर्ष पश्चात् की वही बात है कि १०० वर्षों तक एक ही मुक्तिपूजा का प्रमाण वेदों से नहीं बूझ सके और हुस्नइबाजी से काम लेकर सस्ली जीत की प्रसिद्धि चाह रहे हैं। अन्यथा सताब्दी महोत्सव के मुकाबले में विजय महोत्सव रखने का कोई अवसर ही न था।

(१) गालियाँ

गालियाँ देना हमारे जादियों की पुरानी रस्म है। इस छोटी सी पुस्तक में संभवतः कोई पृष्ठ गाली से खाली न होगा जिसमें कार्यसमाज और श्रीविद्यमानन्द की पानी पी-पी कर न कोसता गया हो। कुछ इस सम्प्रदाय के मनुष्य यहाँ भी उद्भूत करता हैं। देखिये :—

(१) "यह भद्र वाली गया कार्यसमाजियों की मौली है, चाची है, दादी है या नानी है? सनातन धर्मियों की चोरी करना और उन्हीं की कोसना ! जल्दा और कोसवान की डाले।"

- (२) "तब हमसे पूछिये कि समाजनिर्माता की पुजा क्यों देशभर इनके पैर में चूल्ह क्यों जलते हैं ? हम समाजकी कार्यकर्ताओं सेभी मुक्ति क्यों नहीं करते ।" पृ० ७
- (३) "बिना पल्ल में खाना उल्टे में खेद करना ।" पृ० ७
- (४) स्वामी स्वामीय भी की मुक्ति का दिवाला निकल गया । पृ० ८
- (५) "वसित संघामी" । पृ० ९ का शीर्षक
- (६) "मे स्वामी स्वामीय की वसित संघामी घोषित करता है ।" पृ० ११
- (७) "अब तो हमें स्वामी की के मनुष्य होने में भी संदेह होता है ।" पृ० १२
- (८) "आगे महाकाय की (स्वामी की) लिखते हैं ।" पृ० १३
- (९) "मे चायुन की आवाज ।" पृ० १४
- (१०) "स्वामी स्वामीय ने सुमन-बानों के विवाह पर वेद का कुलम्मा बढ़ा दिया कि जिससे हिन्दुओं की मनमाना स्वविचार का परमिष्ठ मिल जाय ।" पृ० १५
- (११) स्वामीय की आज पुण्यक सत्यार्थप्रकाश में स्वविचार की तालीम मौजूद है ।" पृ० १६
- (१२) परन्तु अब तो उनके मनुष्य होने में भी संदेह है ।" पृ० १७
- (१३) "तो भी पापी वेद के भरने के लिये..... जनता की इस बात का धोखा देना कार्यकर्ता के लिये चुल्हू भर पापी में हूब भरने की बात है । ऐसी निर्मलता के कार्य करने वाली कार्यकर्ता की संसार सृष्टि की दृष्टि से देखता है ।" पृ० १८
- (१४) "छोटे गये के लम्बे होने, दूरे रह गये ।" पृ० १७
- (१५) "बनाने वाले के गल्ले और बन गया कन्दर" इस प्रकार कुछ शब्दों में ही मिठाई बिट्टू बने । पृ० १८
- (१६) "जानू की दिन में बिछाई नहीं देता तो इस में सुन का क्या दोष ।" पृ० १९
- (१७) समान्य की है कीट की बिछाई से ही दूरपा जा सकता है ।" पृ० २०
- (१८) स्वामीय बढ़ा कीट और कलहारी आज है । पृ० २०

समाजतन्त्र धर्म के चहुरेदार महोदय यह पाठिका न मिलते की भी अपनी पुण्यक करने और बिकने से न चूटी । कार्यकर्ता के पाठ पाठिका नहीं, मतः से इन सकल उत्तर एक ही देता है कि

जब गीरार्थिक ब्रह्म से इन बीसों बातों को वेद में दिखाये के बार २ ब्रह्मों के दिये गये । जिसका उत्तर हमने बार २ वेद में विद्या कर दे दिया था । किसी में साहस हो जो इन्हें वेद विरुद्ध सिद्ध करने के लिये कोई वेद में दिखाये । क्योंकि वेदानुसूता का अधिकार ही यही है कि जिस बात के विरुद्ध कोई वेद में नहीं है वह वेदानुसूत है बीसों कि बीसोंसा दर्शन में स्पष्ट विद्या है कि :—

विरोधे सत्यमेव स्यादसति ह्यनुमानम् । भीमार्जुन १।३।३

अब किसी बात के विरुद्ध स्पष्ट वेद में विद्या हो तो उसे वेद विरुद्ध सिद्धांत समझा जाने सम्यक् । उसे वेदानुसूत माना जाय अतः साहस बचन के अनुसार प्रतिपादी का कर्तव्य है कि जो वाक् वाक् कहने और वशीकृत कहने के विरुद्ध वेद में उपनिषत् करें । सम्यक् वह वेदानुसूत सत्य सिद्ध है । इस पर हमने वेदमंत्र सिद्ध कर इसकी अनुसूता भी सिद्ध कर दी है । सर्वे लगाना और जतं जगत् कर संहार करने करना यही गीरार्थिक साधनाधिपों का काम है जिस का बहुत समता से काशी में देखा गया ।

सब पुण्ड्रों में वेद के नाम से जो कुछ लिखा है कोई गीरार्थिक पंडित इनके वेदमंत्र विद्या है सम्यक् स्वीकार करे कि वह सब कुछ मिथ्या विद्या है । देखिये :—

(१) संवत्सु क्षामवेदोन्तोऽन्तर्भावः सजीवः ।

ह्रीं पुणर्विमम इति सर्वेक्षामक्षमः ॥५॥

ब्रह्मवेदोऽन्तर्भावः २५०८

क्षामवेद में वह मंत्र विद्या है कि :—

“ह्रीं पुणर्विममः”

जुनवा मान वेद से दिखाये ।

(२) क्षीं सर्वेक्षाम सर्वेक्षामिनिमे भवुषुक्षाम स्यात् ।

इतिव संवत्सु क्षामोऽन्तर्भावः ॥२॥

क्षामवेदे च कथितः सिद्धांतो सर्वेक्षामिनि ॥ २५॥

ब्रह्मवेदोऽन्तर्भावः २५०८, २५

जुनवा वह मंत्र क्षामवेद से दिखाये तथा क्षामोऽन्तर्भाव साक्षात् साधनी तथा सत्य साधनी का भी विद्या है । इन्हें वेदों से दिखाये ।

(४) वह क्षामोऽन्तर्भावः

“वहो वर वहमा” नामक पुस्तक के किसी पुष्ठ पर जो वृत्तिपुत्रा को

वेदान्तकृत सिद्ध करने के लिये कोई भय नैराश भावोदय नहीं था बल्कि । इधर-उधर की बापों में पुस्तक समाप्त करती और गालियों का पुष्कल लेबाद कर दिया । गालियाँ देने के सिद्धान्त की तत्पचाई कैसे सिद्ध होती ? पुस्तक में बरतकर विरोध तथा विषयान्तर की तर मार है ।

अपि दयानन्द के विरुद्ध किसी संश्लेष या सुलभता से मित्रता निर्भर शिक्षण लेना क्या सही बात है ? संश्लेष स्वामी दयानन्द के एकल गाने वाले प्रपाकों से बिछे हुए थे । हमारे भारत को एक मूल की सही में विरोध के लिये ही अपि दयानन्द ने वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार किया । ऐसा समझने वाले संश्लेष और सुलभता उनके विरुद्ध निर्भर न देखें तो क्या करते ? बहुतों हिन्दुओं को मुर्त और संस्कार में दूबा देखना चाह रहे थे जिससे वह हिन्दुओं की केली बात २ कर अपने सम्प्रदाय की बड़ाई और हिन्दुओं को इस प्रकार से समाप्त करें । इस पर भी अनेक विपक्ष ईसाई सुलभता अपि के मल एवं कलगीबक थे ।

स्वामी केवलदेव सलाह करने के अन्तिम पहरेदार हैं कि कार्यवाहि की रखा करने वाले अपने कार्य प्रवृत्तियों को समाप्त करके जारी भारहीन जगता की विचलितों की क्या पर छोड़ देना चाहते हैं । कम है धान की पहरेदारी ! अभी तो कार्यवाहि धान जैसे पहरेदारों की कराहती हुई अन्धोली के कहती है कि—

उपकृतं बहु तत्र हिन्दुधर्मे

सुलभता प्रविष्टा ममता परम् ।

विश्वसीद्गमिन् सदा सन्धि

सुखितमाम्य ततः करदां ततम् ॥

—साहित्य कर्त्तृ ।

हे पहरेदार ! मानते यह पुस्तक लिख कर और अपि दयानन्द जैसे महत्तमा की गालियाँ देकर मूल उपकार किया आपके इस उपकार का क्या कहना ? आपने अपनी सम्मति की सुलभता मूल सीखाई । क्या कहने इस सुलभ के । हे मित्र ! मान तो सदैव इस सम्मति के जन चुके ही तो गये ही ऐसा करते रहो किन्तु हम अपना कर्त्तव्य नहीं छोड़ेंगे । समझा आपकी 'पेचड़ों पत्तों' का जीवन प्रदान करने सदा सुखी रहे । धान बीज बढ़ाओ । दूध पीने वाले अपना मूल पानी नहीं बढ़ाया करते । मूल पानी बढ़ाने

(३) मद्रकाली

अतिरिक्तसेवक यह केदारमुक्त है । केद में लिखा है कि :—

सुकर्मणि मद्रकालीमुक्तमलि ॥३॥ ॥ यत्न ॥ ॥३॥

तुर्लभसेवक यह दिख कर निश्चये तु मुक्त, अतिशाली, लोचनमरी, धातुप्रदायक, तथा समुत्पन्नकी प्राप्त कर सके । यह केद यन्त्रार्थ में कहा है ।

अतिरिक्तसेवक के मर्मों में अनुभव जीवन के कर्तव्यों का निर्वहन है । निर्धनी, धनार्थी, अतिमियों, गौ धादि वस्तुओं, वस्त्रियों और लाभदायक शक्तिधियों की रक्षा करके इस यन्त्र का अर्थ है । तथा राष्ट्ररक्षा के साधनों को इस यन्त्राभा और उसके विपरीत कार्यों से मुक्त रहना इस अति-रिक्तसेवक यन्त्र का फल है । राष्ट्र रक्षार्थ पापी दुर्जनो की ताकत के विषे इस विभाग के माधीन जलजाने होते हैं अर्थात् सर्वोप शक्तियों का सुचारु किया जाता है । इसी विभाग के साधन में मद्रकाली कहा है । मद्रकालीयति मद्रकाली । मद्रकालीयनमः का अर्थसाध केवल इतना है कि इस विभाग के वयाधीन जनों के प्रति सामान माना जावे कि दीवियों के बीच दूर कर वनका सुचार है । इस स्वयं सुदरे रहे और सुदरी के सुचार हेतु इस सुचार विभाग की सहायता करते हुए इस विभाग के प्रति कुतलता का प्रकाश करें । इस इतनी-ली बात की श्रित पर प्रहृष्टि रहनेन कोशकैव में अकर लिखते हैं कि—

‘‘यह मद्रकाली स्वा धार्मिकमाधियों की बीसी है, पापी है, धारी है या गानी है । सवाउत्पन्नियों की बीसी करना और जहाँ की बीसना, जहाँ और बीसना की गति । तु- ५

मीनी, पापी, धारी, लानी ती उनकी होनी जिन्होंने सके काली देवी साधकर उसके नाम से सृष्टी मूक वस्तुओं की मारकर अपने पैर की वस्तुओं का कश्चित्तान बनाना मान रखा है । साति हैं स्वयं और नाम देवी देवता का । उन बीसी के भाव काली देवी का कोई रिखा हो ती हो । धारी के साथ उतका कोई रिखा नहीं । इस ऐसे कभील कश्चित और देवपुत्रा के विदे बनाने मये देवी-देवताओं की मानते हो नहीं ती हुबारे नाम उनकी रिखेवारी बीसी ? मानव के लखे धर्मों की मानना सवाउत्पन्न धर्म का काम है, धार्म सवाउत्पन्न ती वधार्थ आत्मीय रहस्यों की बीस-बीस कर लक्षकी व्याख्या करना धर्म सवाउत्पन्न है अतः यह धार्मिक धर्म है । उतका जहाँ सवाउत्पन्न धर्म ने मान रखा है । और कभी २ सवाउत्पन्न धर्मों की आर्थों के धर्मों की धपना कर

निधमियों को उत्तर देकर अपना पीछा बुझाई है। अतः स्वयं और कोलनास को यदि भी कहलवत भी लगी बात पर ही नाक घाटी दिखाई देती है।

मानो न मानो बरखी आसकी :

(६) भीम लगाना

“हम भावों को जो कोई प्रतिनि हो तो उस को दिखादेने कहना धर्म है छोड़ देने (एक के धर्म की भीम लगाने का बर्तन) है।

—कहने पर कहना पुनः १

कह्य है स्वामी केतवपुरी की महाराज ! कि कृपि दयावंत जी तो वा शब्द लिखते हैं और बात उसे भीम कह्य रहे हैं।

भीमद ! भीम कह्यके देवी देवताओं को लगता है की स्वयं का नह कहते : भीम लगाने वाले स्वयं का करते हैं। देवी देवताओं का ही नाम है नाम होता है। वेच तब स्वामी उत्तर बुझ है। यदि वह देवी-देवता भीम न बघावों की जाने तब जाने तो बुझारी भीम के स्वयं से मानते इच्छि तब ही धर्मसमाज तो स्वयं रीति के चेतन देवताओं का मान करता है

कह्ये खिलाता और केवा करता कर्त सम्भरता है। तभी तो स्वामी स्वयंसेव महाराज ने लिखा है कि यदि कोई प्रतिनि हो तो वह भीमन उसको खिला धर्मका धर्म में होय के लिखते धर्म के द्वारा प्रशिक्षण का बना ही।

बताइये तो इसमें क्या भीम है ? स्वयं में देवी-देवताओं को भी लगाना तो नहीं मिलता। देखिये ! मनु धर्म शास्त्र का अमाष्ट देकर हम जाने कृपि दयावंत ने लिखा है कि:—

मुनी च वसिष्ठान् स्वयंवां चतुरोमित्याम् ।

वायसनां कुमीरुं च कनकीनकीन्दुभिः । मनु १।६२

कुम्भी, कंगार, चतुरोमी, पत्नी, कृपि आदि को खिला देने।

अतः स्वयं में वह देवी-देवताओं को भीम लगाना कहीं नहीं लिख वह स्वामीधर्मों की बुद्धि का ही सम्भार है, जिसका नाम भूत से स्वयं धर्म का दिया गया है। नाम लिख दन्त, वस्तु, धर्म भीम दयावि का न खिला दिया प्रतिनि को वा धर्म में बात दिया तो दन्त वस्तुधर्म तो भूते रह गये। अतः धर्मसमाजी वह कह्य कि दन्त मयादि को खिला है हम सुझते हैं कि स्वयंसेवकों यदि धर्म मरे हुए लोगों के नाम पर प्रशिक्ष को भीमन करता है तो तुम उनको क्यों भीमते हो।

कहिये तो स्वयंसेवकों भीम खिला कहे और मानते थे।

ज्ञानने सुधार कर दिया कि मित्रों के नाम पर ब्राह्मणों की शिष्टाचार मूलक श्राद्ध है ।

तब बरा इसमें और सुधार होना चाहिये कि ब्राह्मण मूल मित्रों के नाम पर क्यों करते । क्यों न वह मित्राद् करने कि दिया ज्वार के बदले उनकी सेवा की जाये । उन्हें श्रद्धा का पात्र समझा जाये । तब ही समाजदर्श का सुधार होकर समाजदर्शन करनेवा की वेद शास्त्र के आधार पर होना । प्रभी ली अहिंसा का नाम ही समाजदर्शन है जिसकी अकारण ज्ञान कर रहे हैं सभी हमकी सगुणों सुधारों की आवश्यकता है ।

प्रार्थनाभाव इन्द्र, ब्रह्मा, विश्व आदि के बहु देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की पुज्य कदापि नहीं मानता और उनके योग समान भी वेद विरुद्ध समझता है । वह सब नाम इन संघों में विवर के हैं और वीरुवन के राष्ट्रपति करने वाले विश्व-विश्व विचारों के अर्थों के नाम भी हो सकते हैं । विश्व राष्ट्र और संसार का भवा होता है । वह वह ही भवना चेतन उन का नाम देवता है । सभी ली निरुक्त में लिखा है कि—

‘विभी शानाया अतिशया दीपमाया..... । निरुक्त अ० प ० अ० १२

ज्ञान करना, अकलना, अकलना आदि दुष्टों के देव ज्ञान बनता है । जड़ देवी का सुधार मत में होता और चेतन का उत्कार मत तथा देवता की सेवा करने के ही संभव है अतः इन दोनों प्रकार के आचरणों देवी के सुधार तथा उत्कार के लिये अहिंसा दर्शन ने लिख दिया कि जीवन का भूला अतिथि आदि मिल जान ली शिष्टा में अन्वया अग्नि में होय दें । इससे मूलक श्राद्ध की सिद्धि कदाचित् संभव नहीं ।

(७) मूलक श्राद्ध सर्वाधीन है

मनु धर्म शास्त्र में १२ दिन का मूलक श्राद्ध कहीं नहीं लिखा । यह ली सर्वाधीन है । इसका नाम समाज धर्म नहीं है । देखिये :—

नुविष्टिर की भीष्म ने कहा गुनाई कि निमि का गुना गुन “भीष्मन्” कर गया । जीव में जड़ों की बहुमाने के निमित्त जड़ों की रधि का व्याप रख कर ब्राह्मणों की शिष्टाचार । पञ्चाल पञ्चालाया कि केवलरुद्ध कार्य के अहिंसा होय :—

अन्वयात्तमेन महता अन्वयात्तमेनचित्तम् ॥१६

अन्वयात्तमेनः पूर्व कि अन्वयात्तमेनचित्तम् ।

किन्तु अन्वयात्तमेन न यो अन्वयात्तमेनचित्तम् इति ॥१७ —अन्वयात्तमेन २१:१६, १७

निधि बहुत बड़े पात्रवाला है लपटा हुआ सोचने लगा कि मुनिगो ने पूर्व कभी भी मृतक के लिये धाड़ नहीं किया। येन यह क्या कर दिया, कहीं साधुगण धार से बुझे जमा न हों।

बराह पुराण में भी यह कहा जाती है। वहीं इन महाभारत के ऊपर लिखित श्लोकों के पात्रानु लिखा है कि :—

सन्तार्यभूतमरुतमर्थमकीलिकरं द्विजः ।

न च भूतं तथा पूर्वं न वेदोः ऋषिभिः कृतम् ॥

मृतक के नाम धाड़ करना सन्तार्यभूत है। इससे स्वयं ज्ञाति नहीं होती बीर न उस मिलता है। येन इससे पूर्व मृतक धाड़ का नाम तक नहीं सुना। दोनों बीर ऋषियों ने यह कार्य कभी नहीं किया।

तब भारद्वाज ने निधि से कहा कि—

न जेतव्यं स्वया युव प्रेतकार्यकृते वसि ।

अथ प्रकृति लोकेऽस्मिन् विद्युत् अस्मिन्निति ॥

बराह पुराण अस्याय १५७

हे पात्रानु ! आपकी युव के मृतक धाड़ कर देने पर नहीं करना चाहिये। धाड़ के इस लोक में विद्युत् होने लगेगा।

इस प्रकाश से सिद्ध हो गया कि मृतकधाड़ निधि से पूर्व प्रचलित न था। अतः यह कार्य कलातन नहीं, अर्वाचीन है। कलत सिद्धांती की मानने का नाम ही कलातन यहाँ तक गया है। उसी की कलातन प्रहरी महोदय कारने मन यह जब महोदयों की यह व्यवस्था है तो शेष कलातन की क्या व्यवस्था होगी ? निरुपगत के अर्थ मृतक धाड़ के नहीं हैं। जीवितों का नाम भितर है। वेन में ही लिखा है कि—

जीवन्त नाम ते नाता जीवन्तो नाम ते पिता ॥

—अथर्व १६.१६.१३

बीती हो तेरी माँता बीर जीते हो तेरे पिता है।

पुराण में भी लिखा है कि—

अमरदाता भवदाता वसीतातममर्षीय च ।

वितादाता अमरदाता वसीते पित्रो वृत्ताम् ॥

अथर्ववेद पुराण अथर्ववेद १ अ० १०.१३.१

अमरदाता, रक्षक, स्वाम्य, अमरदाता बीर अमरदाता यह पाँच मनुष्यों के भितर हैं।

पुनः इसी पुराण में लिखा है कि—

विद्यादाताम्वदाता च भयदाता च धन्यदाः ।

कन्यादाता च केदोक्त विद्वत्पुत्रः स्मृतः ॥

ब्रह्मर्षिकर्त्तृ मनुष्यसि ब्रह्म २ अ० ब्रा० ३

विद्यादाता, भयदाता, भयदाता, कन्यादाता, कन्यादाता मनुष्यों के यह दोष विद्वत् है ।

यह निर्दोष ही क्या कि केदोक्त विद्वत् मूलक नहीं होते । जीवित विद्वत् के ही । जीवित विद्वत् की आज्ञा के सेवा करने का काम ही आज्ञा और जो क्षमि करवा हो तर्क्य कहाता है । कन्या पुत्रों की विद्वत् कहें तो तर्क्य के विद्वत्पुत्रानुसार व्यवस्था में नदबड़ी होती । बरिष्ठ पुंरु दिवा उर त्-पुत्री से उरकी क्षमि कर्त्तव्य है । केचित्—

यः च संयत्तः पुत्रा मे हि मयी जाता पुरातनवत् ।

तत्पुत्रपत्नी तदुत्पत्त्या मेव जाता तत्कन्याती ॥२॥

मेधातिथिः सुता सुता सुनिर्धनस्य जीमती ॥३॥

यर्त्तं पति बहुतमानं वसिष्ठं संततिवत् ॥४॥

निकपुराण यह संहिता २ वरी संव २ अ० १५-१०

ब्रह्मा बोले कि यह मेरी लक्ष्मी मन्वा मनु मे पूर्व वंश हुई । उन तत्-र वरीर लक्ष्मीर लक्ष्मी मन्वा दूसरे जन्म में कन्याती बनी । मेधातिथि मुनि यह की लक्ष्मी बनकर उरने प्रबोद्धित वर वाले बहुतमान वसिष्ठ की पति व में वर कर विवाह किया ।

वसिष्ठ की ब्रह्मा के पुत्र से और कन्याती पूर्व जन्म में ब्रह्मा की पुत्री । । जिसका नाम संयत्त था । कन्याती ने अपने पूर्व जन्म के माई के नाम विवाह किया । क्योंकि वसिष्ठ की ब्रह्मा का पुत्र लिखा है ।

केही मातराज ने बोले के ब्रह्मा कि—

पौत्रोपपत्त्यान्ती राजोक्तिः, वसिष्ठी ब्रह्मपुत्रः ।

तेन राज्याभिषेके तु सुहृत्तः कश्चिदोत्तमवत् ॥ —मीमंसा

राम विमोही नाम और वसिष्ठ ब्रह्मा के पुत्र से । वसिष्ठ ने राम के ज्वाभिषेक का सुहृत्त कहाया था जो वरत निकला क्योंकि राम की राज्य बदलै १४ वर्ष के कन्याती में जाता पड़ा । अतः यह क्षमि ज्योतिष ही है ।

मन्वा ब्रह्मा की पुत्री की । दूसरे जन्म में मेधातिथि की पुत्री बनी,

नाम सम्भवती दुष्टा । विद्याह् भविष्यति विद्या तौ पुनः जगत् का उत्पत्ति का है । तब यदि मृतक का नाम पितर है और मरने के उपरान्त भी पिता का दृष्ट, तो भविष्य सम्भवती का विद्या अनुचित मानना होना । अब ग्रहरी ३ बताये कि इन दोनों में समाधान कर्म क्या है ?

प्रत्यक्ष मुनिवत्ता में बढ़ा है बिबोदात्मन का सोने वाला ।

जो वह टाँका ली वह जघड़ा, जो वह टाँका ली वह जघड़ा ॥

वही समाधान कर्म की सम्पत्ति है । जिसे ऊर्ध्व के कवि ने वर्णन कर कि है । मरः मृतक आह् वेद विद्या और सर्वथा समानीक है ।

(४) प्रयासाभावात्

स्वामी केवल पुत्री ने कुलिपुत्रा के अनुपरोध में अपनी पारी पुत्राय एक की बंध बेटी से नहीं विद्या । अपि स्वानंद और सर्वसमाज पर कु कुलिपुत्रा सम्पत्ति से ली है । इतने में ही आप पुत्र है और कुलिपुत्रा ३ सम्पत्ति सम्पत्ति रहे हैं ली आपकी पहरेदारी क्या समाधानकर्म की रक्षा । देवदारी आपकी मुबारक ।

(६) सुरे की पुत्रा

ग्रहरी जी ने लिखा है कि—

“स्वामी स्वानंद जी ने भी कहा कि माई के सुरे (चमरे) से बाली करो । स्वानंद जी की रचित संस्कार विधि के भीम प्रकरण में लिखा है कि—

“छो किछ्छीर्द’प्योति” इस मन्त्र से सुरे की ओर देवदार (स्वानन्द) से इसका कर्म नहीं लिखा) इसका कर्म है—हे सुरे ! तू किपु की ब है ।.....तुने मन्त्रकार ही । तू इस मातृक की हानि मत पहुँचाना.... हे लेख धार माते सुरे ! इस मन्त्र की मत मार ।

जिसेकी बातकी ! आप समाजियों का परवाला का ईश्वर निराकार निराकार की दाह बीड़ी ? आप जानते हैं कि हवा निराकार है । क्या आप जगती दाह देखी है ? संसार देखी है तो क्या कर मुझे की बनाने मत ब करें कि जिसने हम्ब और जिसने सेक्सीमीटर लम्बी-बीड़ी और मोटी हो है ।”

पु०

ग्रहरी जी स्वयं स्वीकार करते हैं कि स्वामी स्वानंद जी ने सुंदर संस्कृत में दिये मन्त्र “छो किछ्छीर्द’प्योति” का कर्म नहीं लिखा ।

आपने स्वयं समझने कर्म करके पापों पर जड़ दिने और समानीक जी मने से निकर कर ली । दाह आपकी पहरेदारी । समाधान कर्म की वृ

कारी का यही संक है ? साथ ही कहा है कि—

वही है बाब बेइमी जो पहुँचे भी सी कम भी है ।

इसमें समस्त धर्मों की कल्पना करके वही धर्म स्वयं स्वामन्द पर मड़ देते हैं और कहते हैं कि अब अपनी रक्षा कैसे करेंगे ? कवि के प्राय लेखों के लिए ही लिखा था कि—

वही कारिग, वही मुकामिर, वही है मुखसिक भी ।

कैसे कलकला करें खून का दावा किस पर ॥

बीमान् जी ! आपके धर्म सर्वथा सख्त और अकरछ के विरुद्ध हैं । यदि किसी धार्मिकताओं ने भी इसके वही धर्म लिये हैं तो उसके सख्त धर्म भी स्वामी स्वामन्द जी पर मड़े नहीं का सकते । पहले स्वार्थ धर्म करने की धार्मिक विधि जानी चाहिये ।

विमल जी केदारजी प्रतिपाद्यक धर्म धर्म है उसमें बंधों के तीन प्रकार के धर्मों का वर्णन किया है । साध्यात्मिक, साधिरैतिक और साधिनीतिक । यह तीन प्रकार के धर्म होते हैं । तथा वास्तव का कुछ सिद्धान्त है कि—

अकरछतः एक निर्विकल्पाः ।

धर्मों का निर्विकल्प प्रकरछानुसार ही होना चाहिये । अतः प्रकरछानुसार हीक धर्म साम्प्रदायिक विभिन्न प्रकार होते हैं—

धर्मो वे विष्णु । उत्तराय १।१।२।३

विष्णु सत्ता का नाम है ।

ईश्वरो वेदवचने = काटने का धर्म ।

स्वधर्मि = अतः । निर्घट्ट २।२०

धर्मः = सत्ता । निर्घट्ट २।३

इन साम्प्रदायिक प्रमाणाओं के साथ अकरछानुसार इसके हीक धर्म होते कि—
सुंजन संस्काररूपी सत्ता का साधन सुरा है । यह संस्कार सत्ता कीभासी बना होना चाहिये जिससे इस सत्ता के लिए की कष्ट न पहुँचे ।

सुंजन संस्कार में परमात्मता की राह का धर्म करना धर्म नहीं तो क्या है ? सुरा कीभासी ही । इस अकरछ में हमारा धर्म ही उचित है ।

सुरा में सुरे की नमस्ते का विधान है । उसका उत्तरदायित्व आप पर है क्योंकि आप ही नमस्ते काव्य से ही दूर भागते हैं—

सुरिके रस मां निरव नमस्तेस्तु है ।

—विविध सुरासु उत्तर धर्म ४ अ० २१०।१०

है धुरे ! मेरी रक्षा मिल कर, तुझे नमस्ते ही ।

मन्त्र : मायकी सभासोपना मान कर ही अतिार्थ होती है ।

(१०) घट्टेले की पुजा

“घोर देखिये ! इन सभासुत यहीं जीम भोला, संकट, संकट-पत्थर व
मयबाद मानकर पुजते हैं, जीम कपाते हैं धार्यता करते हैं तो यह धार्यतामार्ग
भी जो यह (संकेत) पत्थर की पुजा करते हैं । यकनी के घट्टेले की पुज
विधिवत् करने की दशान्वय जी ने कहा है । इसलिये धार्यता देखिए कि इस
सभासी मुक्तिपुत्रक है । तब इन के पुष्टिये कि सभासुतियों की पुजा करते देव
कर इनके पैर में पुज नहीं करते हैं ?

पढ़ते पर पढ़ता पुनः ५

घाटने घाटने सबों की सिद्धि के लिये सभासुत कोई नहीं बिना । जिस
मान की जीम के धर्म में विनोदक बीजा बाटा है, यकना नाम बीजिया
मान होता है जो जीम की पुनर्जी बाता घोर बीज्य नभ बाटा है । ऐसे ही
दुष्टिया मान घोर गृहदिया मान इन पुनर्जी से पुज्य होते हैं ।

इसी प्रकार घाटि दशान्वय जी ने भी वेद सभासुत में वेद में घाटने
वाले मुहावे के साथ जीम की भी, पुजादि से सुसंस्कृत करने का प्रकार
बिना है । इस विद्या के ज्ञाता सब की देना करते हैं । यहाँ घट्टेले की
पुजा की कोई नहीं नहीं । इसी धार्यता यह मुक्तिपुत्र का समर्थन की
गयी होता ।

घाटने संकट, संकट पत्थर की मयबाद मानकर पुजा करते हैं सबों
के पैर में पुज की वकता है कि यह कार्य वेद विरुद्ध है और इनसे मार्ग वादि
में पुज वकती है । देखिये वेद में लिखा है कि—

सम्पत्तमः अतिशयित मेज्जमुक्तिपुत्रास्ते । ततो पुन इव ते तन्ने मात
सामुद्रा ॥ यतः ॥ यतु= ४०१२

जो जीम सारसुतन यह गृहद्वी की ज्ञातता करते हैं यह बीजामकार में
प्रतिष्ठ होते हैं और जो जीम सारसुतन यह सभासुतों की ज्ञातता करते हैं । यह
ही सभासे सुमिह सभासुत सभासुत में प्रतिष्ठ होते हैं ।

मन्त्र : वेद सभासुत से बाता की है कि

न तस्य प्रतिभाति कस्य वाप्य मृद्वयः । यतु= ४०१३

सभासुत की कोई प्रतिभा = प्रति नहीं है जिसका नाम बहुत की वन
बाता है ।

एव मय में देवदर के नगरकी नाम बीजम् की ज्ञातता की बाता है

और उसकी मूर्ति का सर्वथा निषेध है। क्योंकि सर्वव्यापक विराटर की मूर्ति नहीं होती और न वह सरीरकारी होता है अतः वेद ने कहा कि—

अन्योन्यमुपलभ्यतेऽन्योन्यमन्योन्यं सुदृग्मनस्यविद्वम् ।

कविर्मनोऽपी वरिष्ठः स्वयम्भूवावातव्यतीक्ष्णान् व्यावधान्यावलीन्यः

अथाप्यः । मनु० ४.५.१०

यह परमात्मा सर्वव्यापक है, किसी भी कार्य में बाधन की शक्ती नहीं रखता अतः वह काया-मनो-रहित, अक्षे-कुण्डी के रहित, सत-साक्षी के वाक्यन के रहित, और तीन प्रकार के सरीरों के बन्धन से भी सर्वथा रहित है क्योंकि वह शुद्ध स्वयं और पार रहित है अतः किसी सरीर वाक्यन में नहीं संलग्न । यह आन्तरशील, सभी का स्वामी सब और सर्वमात्र, और सर्व-सिद्ध है उसे किसी के नहीं बनाया, उसी परब्रह्म परमात्मा ने वचाम् वक्षेत् अथात् मूर्ति के लक्ष्यों की रचकर अपनी शिर्ष रहने वाली औरकपी प्रकृति के शिवे वेद के सर्वों का प्रकाश करके अपना विमान दिया ।

इसी एक मन के वचार्थ सर्व को प्रहरी की समझ में ही अपनी सिली दुस्तक का जीवन स्वयं कर देने ।

(११) हृदय मंदिर में भगवान्

‘हृदय मन्दिर की शर्ष समानिरी कीती सुकीर्ण कभी नहीं करते । हृदय ही मनु-मनु में रहने वाले परमात्मा की मूर्ति की कल्पना सब के पहिले हृदय में करते हैं । फिर उसके शर्षना करते हैं कि वही भाषी, दस मूर्ति में वही, बीरकर सिद्ध हो जायो । विचार कीजिये कि हृदय भस्म की दुबले हैं पर मन्दिर की । समानिरी का अनुकरण करना और उसी को वाली केना, जिस पल में जाता उसी में हो करवा ।’ यही पर ब्रह्मा पु० ७

स्वामी केमन्पुरी और हृदये वीराष्टिरी की भगवान् ने बना कर इनमें प्राण प्रतिष्ठा की किन्तु यह मनुमान परमात्मा की बना कर उनमें प्राण प्रतिष्ठा करते हैं । मन्पुरादि नरों से मन्मान बन कर जाके, बिकले-बिकले, बाड़ी में भाषा करते हैं । बोरी भी हो जाते हैं । इनकी मन्पुराण ब्रह्माण जाते हैं । उन मन्पुराणों की रक्त की मूर्तियों के मन्मान् सर्व नहीं कर सकते । उनके अष्ट, बावी, सीमा ब्रह्मा, प्राणप्रतिष्ठा, प्राण विमर्शनादि कार्य सभी मन्पुरी के असीम हैं पुनरपि यह मन्मान् मान जाकर बुझे जा रहे हैं । वेद के शर्षों में इतले ब्रह्म, और, ब्रह्मकीर, ब्रह्मकार और स्वा होता ? काशी के विश्वनाथ मन्दिर की औरवनेन ने लोभकर, मन्दिर में लपटी कर

किया किन्तु विश्वनाथ जी अपने घर की रक्षा न कर सके । किसी ने मूर्ति कुप में डाल दी तो प्रविष्ट हो गया कि विश्वनाथ जी की करामात देखी कि म्लेच्छ के हाथों ने विश्वनाथ जी भ्रष्ट न हो जायें अतः कुप में जा दिये हैं । आज दिन तक विश्वनाथ जी का निवास कुप में है और दुबारी कुप में भटक कर बग-बग, बग भौंते महादेव के पीछे से उन्हें प्रसन्न करते हैं । किन्तु औरंगजेबी साम्राज्य सत्तागत हुए तबियाँ बीत गई । सर्वेजी सामन बाबा और उसके पश्चात् भारत की स्वतंत्र्य हुए इतने वर्ष हो गये दुबारी विश्वनाथ जी इतने मनभीत है कि कुप से निकलने का नाम नहीं लेते । उन्हें कभी एक बात ही नहीं कि अब उसके म्लेच्छ से भ्रष्ट होने का कोई भय नहीं ।

होमनाथ मन्दिर की महादेव की मूर्ति को जिस प्रकार से अहित करके बहुदूर गङ्गाजी ने लूटा और भारत की कलसा लमबाओं के साथ जो डीली, बहु इतिहास का विषय है । इन विचारे मूर्तियों के अहित पश्चात् भारी आति की पीड़ा को क्या जानें ? स्वयं साधु संकराचार्य जी ने बीड़तीनवार पूजा का संकल्प करते हुए मूर्तिपूजा का निषेध किया है । देखिये :—

पुण्यस्वावाहनं कुप, सर्वभारस्य साकल्यम् ।

स्वच्छस्य पादपार्श्वं च, सुदामावसनं कुतः ॥१॥

निसेरेण कुतो वन्द्यः, पुण्यं निर्वासनस्य च ।

निर्विधेयस्य वा पूजा, कीर्त्यकारी निराकृतेः ॥२॥

चित्तकुलस्य नैवेद्यं, ताम्बूलं च कुतो विभोः ।

विरक्तमय च किं धूपैः, नैवेद्यं किं भवेत्किम् ॥३॥

स्वयं प्रकाशमानस्य कुतो गौराजनं विभो ।

घनतर्पणं पुनरपि, सर्वं निर्वीतनं भवेत् ॥४॥

स्वयं प्रकाशविभो गौरावर्जनि भास्करः ।

गौरादेव, तिमिरस्य, गौराजनविमिश्रितः ॥५॥

प्रदक्षिणमनन्तरं, प्रणम्योद्धारयत्पुनः ।

घनतर्पणं संविधतस्य नृदामनिमित्तम् ॥६॥

—स्वाधी संकराचार्यकुल परा पूजा बहुलतीव्र लज्जाकर

स्वयं शशिपुत्रों ईश्वर का आवाहन (पूजा) कहीं हो सकता है ? सर्वभार को सामन देना नहीं बलत, स्वच्छ और निरुप संविध का बाद पुन प्रकाशन बलत है, सुद स्वस्थ का आचमन भी कहीं और क्यों कर होगा ? ॥६॥

विशेष नारायण की सुगन्ध कबीर की जाए ? वाक्या रहित की पुनः मंद की साधनकता नहीं । विशेषज्ञ रहित के सिधे कथन परिचय संभव नहीं तथा निराकार परमात्मा व्यक्तकारकारी नहीं हो सकता ॥१॥

विशेष सुगन्ध ईश्वर की कथन लभाना नहीं बनता । विष्णु सर्वव्यापक भवमान् की सम्पूर्ण देना बेकार है । निरंकुश भवमान् की सुगन्ध, बीच की साधनकता नहीं ॥२॥

सर्वव्यापी स्वयं प्रकाशमान प्रभु की साधनी कैसे होगी ? अन्तर बाहिर परितुष्ट परमात्मा के बाहिर जाने (विनिर्गम) का क्या परिणाम हो सकता है ? ॥३॥

की स्वयं प्रकाशमान केवल एकलव्य सुखसिद्धि लोकलोकान्तरी का प्रकाशक है जिस की महिमा का मान केवल की श्रुतियों द्वारा होता है कसकी साधनी सुगन्ध की बीचक सिद्धाने के लभान सम्पूर्ण प्राप्त है ॥४॥

प्रकाश प्रभु की प्रशस्तिरूप नहीं हो सकती तथा अद्वितीय भवमान् के सिधे प्रमाण नहीं हो सकता । अन्तर बाहिर परितुष्ट भवमान् की प्रमाण विनिर्गम सिद्धि की संभव नहीं । सुगन्ध द्वारा लभान प्राप्त विनिर्गम की नहीं हो सकता ॥५॥

एक भवमान् सत्त्व-गुण में रम रहा है । सर्वव्यापी सर्वनिर्गामी है तो कसकी सृति की सत्यता हृदय में कहाँ हो सकती है ? भवमान् के प्रार्थना करना कि कहाँ साक्षी, इस सृति में बेटी, बेट कर निर्भर हो जाओ । ऐसा कहना ही लभान है । भवमान् की समझना साक्षी दूर की बात है । वास्तविक पर हीक ईश्वर के विचार किया होता तो प्रभु की वह शब्द न मिलते । या वे शब्द ब्रह्म कर मोक्ष देने रहे हैं जिसमें कोई विशेष स्वार्थ निहित है । वह प्रभु की सहीकर धर्म । में इस में कुछ नहीं कह सकता । प्रार्थनमात्र वैविध्यधर्म के सर्व विद्वान् की मानता है । हमें समांतरधर्म के सम्बन्धकारण की माननकता नहीं । "विश्व सत्त्व में माना लक्ष्मी में श्रेष्ठ करना" इस वाक्य की हृद स्वीकार नहीं करते ।

(१२) बुद्धि का दिवाला जिसका

प्रभु की की सीमासीरी केविधे कि श्रुति द्वायार्थ के मान के कथने मरदाने लभान मिलाकर पुनः उनका उपहास करने लग जाते हैं । साधनी है ऐसे धर्म ईश्वरी की जो धर्म द्वायार्थ समर्थकारी कार्य करने में की संशोधन नहीं करते । वह तो ऐसी कार्यवाही है जैसे किसी की वेध में कसकी लभानकर, कसकी-कसकी का मोर कथा निष्ठा मान । साक्षी-केवल पुनः निश्चय है कि—

“स्वामी स्वामीय जी ने भी कहा है कि जूने से प्रार्थना करो।” “संस्कार विधि” के समावर्तन प्रत्येक से स्वामी स्वामी जी ने लिखा है—

सर्वे प्रसिद्धे स्वर्गे विद्यमाने वा नान्यथा ।।

पारसकर कलह १ व. १

एक मंत्र है जो सब के भागीदार है—

“हे नृणा ! तुम मरीच के आकार हो, जब सुख पर होते, पाणी भी रखा करो।”

पाठकों ! किसी गहरिया, चकियारा या मेहरार की यह उपदेश सुनना लेकिन बिलकुल रहे, दूर से जान करना, ताकि अगर कहीं वह दूरा निकल कर चले तो पाठकों को नहीं । तबभी बचाने की कोशिश का दिनांक निश्चय गया ।

आपका पत्र मिला।

ऊपर के शब्द प्रहरी के किये हैं। 'शक्ति सम्पन्न' के नाम से जो कुछ इन लोगों के लिखा है सर्वथा भ्रमपूर्ण और उसकी समझौचा में 'सत्ताही सम्पन्न' की बुद्धि का विचार निकल गया" यह संसार के इतने बड़े महापुरुष के प्रति सम्पन्न प्रभाव नहीं हो गया है ? सोचें कि मुझे यह शब्द कबल करने पड़े : नकी ऊपर ऊपर व वाला ।

है यह तुम्हारे की लड़ा जीती रहे जीती मुने ।

यदि अनात्मता यमी का काम वाली देता ही रह गया है ? वाकियों के ही यमी निर्धार्य होगा क्या ? शोक : महाशोक !! इसके भी शक्तिशाली शोक यह है कि इस दुस्वर्ग के टाईटल पर लिखा है कि—

संस्कृत-भाषायां चरित्र-विशेषः

महामन्त्र प्रकाश पाराशारीक महन्त्र श्रीविष्णुविराजित अष्टमूर्त संहराचार्य
श्रीहरीश्रीहरीशार सुमन्त्राद स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ श्री महाराज का
आशीर्वाद—

¹¹इस पुस्तिका की खोज मेरे कुमायौनीय है ।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

क्या राष्ट्रीय नाकियों की यह कार्यवाही ठीक है ?

महरी साहित्य : संस्कारविधि में यह कर्म नहीं नहीं मिले : यहां केवल पारस्कर का संस्कृत काल दिया है : उसके कर्म भी नहीं मिले : यह सभी कर्म काव्य के साधनिक हैं यही पर पाठने करिवा, भविष्य, केहतर द्वारा पूजा के कर मारने का अनर्थन प्रलाप किया है और महर्षि की स्वामी स्वामि की महाराज की काव्य में कुछ-का-कुछ लिखा है : यदि पाठ में काव्य है तो संस्कार विधि में पाठ के यह कर्म दिखाएँ : अनर्थन से करिवा और सभी

हमें के महाभाग के बचिसे । धन्यवा धानकी दीवरीय प्रकीर्ण का साजन बनना होना । धानने महापुरुषों के संरक्षण भी धारा १२३ का भी होना है । सरकार एक धानके यह शब्द पहुँचे तो सबसब दूध-का-दूध और पानी-का-पानी होकर रहेगा ।

सरकार के जनों का मान स्पष्ट है कि तत्काल कुँते पहुँचा हुआ रहना है कि—

प्रतिष्ठी स्वी किल्लनी मा पातम् ।

के कुँते मतकूल है, जब धीरे के चौरों की रक्षा करें । अतः मैं इनको पहुँचा हूँ ।

संस्कृत व्याकरणानुसार यही संभव सर्व हो सकते हैं ।

अन्तर्गो बहुलम् ।

अन्तर्गो ३।१।२५

पर महाभाग में कारिका है कि—

सुप्रसिद्धपद्वर्तिनगराणां कालकूल च स्वरक्तुं पञ्च ।

अन्यदपिभिक्षुलिङ्ग सात्वतकुरेयां कोऽपि क सिद्धयति साहसकेन ॥

इस कारिका में सुप्रसिद्ध अन्तर्गो भी है । जिसके अनुसार यही संभव सर्व है ।

मिरल में महर्षि धानक ने परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और अन्वयकृत तीन प्रकार की व्याख्या का बर्णन किया है । धानने यह ही का चेतन उसे तू यह कर बर्णन किया जाता है किन्तु यह में समस्त अधिप्राय "यद्" के होता है । जैसे वे मेरी समवार ! तू बहुत तेज है । धान यद् की काट गिरा । इसका अधिप्राय स्पष्ट है कि यह मेरी समवार बहुत तेज है । इससे धान में यद् का सिर काट गिराजना ।

यदि महाभाग सभी जादूयों में धान की कुछ भी विज्ञान है तो वैदिक धर्म विधि की समझने की कृपा करें धन्यवा यद्मि दशकल्प जैसे महोपकारक देवता पर वाली श्रुति करना दीवरी के सम्मुख दोषी रहना है । मैंने वाली के उत्तर में वाली देना उचित नहीं समझा । तूक में स्वीकृत कर ही चुका हूँ ।

यद्यु यद्यु वाली वालीमन्त्री भवन्तः ।

अथपि त्वय्याद् वालीवायोऽथमर्थाः ॥

अपि विरिष्येयद् दीवरी किल्लपात् ।

नहि सत्तर्कविवाहं कोऽपि कर्मवदति ॥

मेरा कियेयत है कि सत्य संसार तो बुद्धि का दीवाना वाली देने वाले का ही सम्भन्ध है अतः इस महाभाग के बचिसे ।

(१३) छठी का दूध

“छः दिन तक माता का दूध चिने और रबी भी खपने करीर की पुष्टि के कार्य करनेका प्रकार के उत्तम जीवन के और मोलिबडोपन की करे । छठे दिन रबी बाहिर निकले और वन्यान को दूध पीने के लिये छोड़ पावे रहें । उसको खान-पान सम्पन्न कराने । वह वन्यान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे । परन्तु उसकी माता उसके पर धूर्त दृष्टि रहें । किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पालन में न हो । रबी दूध बंद करने के कार्य छठ के सब काम पर देखा लेन करें कि जिससे दूध क्षयित न हो ।”

सामर्थ्यवादाय अनु० ४

वह प्रमाण देकर यही भी लिखते हैं कि—

पाठकी ! बेचारे करीब सामर्थ्यवादी को मारे गये । उसकी धावी रखने के लिये कैसे कीन होगा ? और मोलिबडोपन की विधि किन्त-किन्त से पुछते फिरें । दूसरी बात यह है कि—एक बगवान्, बुद्धिमान् या सामर्थ्यवान् दूसरे को लक्ष्मकारण है कि या माघी विधवा का ने दूध पिलाया है । विचार करो कि किन्तना दुःख मरा है इस कष्टमय के समुद्र । न जाने किन्तनी लम्बी परम्परा से यह रबी माघी है और कैसी की टांग लीकने वाले स्वामी स्वानन्द की माघी का दूध पिलाने का उपदेश देते हैं । आम्ने है, धावी रखने का यह बाध्यकार स्वामी स्वानन्द की ने ईसाईयों से प्रेरणा लेकर किया है । उनके जीवन का प्रेम होता है—“हैर, किन्त देव की भरी” जबकि दूसरे भारत का प्रेम समुद्र की परमात्मा बताता रहा है । पु० ८, ९

रामी केवल पूरी खपने कार्य सभी को जानते तो यह जगद बहादि न लिखते जबकि माघी में यह सब कुछ लिखा हुआ है । इन समस्त सिद्धान्तों पर समस्त धर्मियों का धूर्त विश्वास है । और मुख्यतः यों यह सब कुछ करते हैं । सामर्थ्यवान् मुख्य के लिये ही धावी रखने का विधान है । सुश्रुतादि वैद्यक ग्रन्थों में धावी के उल्लेख नहीं हुए हैं । सुश्रुतादि में करीब समस्त धर्मियों के लिये धावी का विधान नहीं है । सामर्थ्यवान् के लिये है । रामायण में भी धावा रखने का वर्णन है । राम के पालन-पोषणार्थ धावा का प्रबंध किया गया था ।

सा हर्षोत्पुल्लवनां पौडूलाभ्यास्त्रिणीम् ।

सविदुरे स्थितां दृष्ट्वा कारीणप्रसन्नं कञ्चरा ॥

इस संसार के उर्वर में तुमने पैदा नहीं, पैदा की क्या आशा है कि नमीय
झुकी हुई धारा की ऐसीकर हमसे बड़ा ।

मुझ में लिखा है कि—

तुमने हमसे 'हम' कहावहाँ' धारीमुनेनाम् ।

मुझ में आरीरिह न्याय य० ६०

तब हमसे दिन कहावहाँ' धारा की आशा करे ।

वेद में भी इसका तुम भीकृत है कि—

आपसेले लिखनेको समीची ।

यमु० १२१२

एक लिख की दो मातासे कुछ नाम कराती है ।

अतः यदि कहावहाँ ने भी कुछ लिखा वेद सत्य के आधार तथा वेदका
झुकी के अनुसार लिखा । किन्तु इसका अनुसार सामर्थ्यवान् लोगों के लिये
ही है । जैसे एक तुमने कहावहाँ पर आधारित है । कहावहाँ व होने पर
वेदका मंत्र पाठ ही कहावहाँ है । जैसा कि वेद में कहावहाँ है । अतः आपसे मुझ
काम कि "वेदारी तरीक आर्यभट्टाजी की बारे में कहावहाँ धारी एवम् के
लिखे वैसे हीक केना ?" ज्ञान ही यमे ।

भीक में प्रसिद्ध है कि ललकारने वाला कहावहाँ है कि जिस माई के नाम
में कहावहाँ ही मैदान में लिखने । यी एसे कहावहाँ का दूध बाध बाध हुआ ।

यदि नाम कहावहाँ धर्म का सिद्धांत यही समझें हैं कि किसी की समझना
में कीई भी धारा नहीं वरन् ललकार और धारा से कहावहाँ की दूध पिनाना
आपके सिद्धांत के विषय है तो इसका समाधान कीजिए कि—

अभिद पुन ललकारिह तुंभेकहिनिमुना ॥६०॥

दुष्टदुष्टेनु आन्यास्ताम् समसमेदम् ॥६०॥

आन्यास्ताम् य० ६०६०, ६०

आशा हमारे के सत्य द्वारा ललकारे तुमकी की भीकृत विकल वही । तब
दुष्ट दुष्टी वही में अनेक धाराओं में ललकारी धारा ।

आशा के सिद्धांत वाले जिहा उतावले धर्म एक नाम वेदा दूर ललकारी का
आन्यास्ताम् वैसे कहावहाँ ?

हमारा भी ने माया केवली से वेदा हीकर ललकारी का दूध पिना । लल
सिद्धांत के अनुसार है या नहीं ? अब नाम दस तुमकी की वैसे ललकारने ?
हमारी ही के ललकार की वैसे की ललकार धर्म से कहावहाँ ललकार दूध और वेद
आर्यभट्टा ज्ञान है । आन्यास्ताम् काज की भी ललकारी वही की ललकारी धारा

के जो पवित्र नियम श्रुति स्वामंद जी ने तिला दिये हैं वे सनातन धर्मियों के लिये परिवर्तन्य ही नये हैं । भय है स्वामी शिवपुरी की महाराज ! माने जो सर्व भक्त ब्रह्मचारी संन्यासी श्री स्वामी बाबू संकराचार्य का प्रभाव सिद्ध कर श्रुति स्वामंद का सम्बंध भी कर दिया । "कि संकराचार्य की धर्म पत्नी भारती माता ने भारचार्य करी हुए, उनसे कामभारत कर प्रभ करके भारंभ किये । बन्धुगुण हेरान ही गये । उन्होंने भारती माता के उनके बन्धों का उत्तर देने के लिये दो मास का समय माँगा । भारती माता ने स्वीकार कर दिया । इसके पश्चात् संकराचार्य जी ने शीघ्र निश्चय के द्वारा अपने श्रुत शरीर का त्याग कर एक तपस्वी बने हुए राजा के शरीर में प्रवेश किया और सांसारिक चीजों का अनुभव किया । ५ महीने बाद उन्होंने भारती माता से जाकर कहा— अब दो मास के प्रश्नों के उत्तर देने की तैयारी है..... यह है भारत का धारणी ।" पु० ११ ।

स्वामी के शिवपुरी सनातन धर्म के बन्धे प्रहरी हैं कि स्वामी स्वामंद की दास कामी सिद्ध करते २ अपनी भारी दास की कामी बताने लग गये कि स्वामी संकराचार्य ने भारती माता की उत्तर देने के लिये पर शरीर प्रवेश करके ५ मास तक काम भारत सम्बंधी सांसारिक चीजों का अनुभव किया । यह ही महाराज ! बात जैसे धर्म रक्षकों को भारदा ही उत्तर वैदिक सनातन धर्म संसार से सहाय हो कर सब उनकी सेवा भारत में भी संकट काट में पहुँच गयी है । श्रुति स्वामंद की दास में कामा व्यवस्था कहा जाय चाहे उससे अपनी भारी दास कामी बतानी रहे । हमसारे की बीमार व्यवस्था विपत्ती है चाहे उसके नीचे अपनी दास क्यों न हम तोड़ जाय ।

बाबू संकराचार्य जैसे निष्कर्तक महापुरुष पर मानने ५ मास तक काम भारत सम्बंधी सांसारिक चीजों का अनुभव करने का दोषापीबल कर दिया । सुनरनि उनके संन्यास की सर्वथा सुरक्षित रही !

प्रहरी जी ! क्या कह और निश्चय रहे हैं बाबू ! हम जो आपके इस सारे लेख को पढ़ेवा निम्नमा मान्यो हैं । हमारा हृदय विस्वाद्य है कि स्वामी संकराचार्य बहुत ऊँचे कदाचारी महापुरुष थे । उन्होंने कामभारत सम्बंधी सांसारिक चीजों को पश्यने के साथ कभी नहीं भोला । भगवान् के उर्ये । महापुरुषों के पवित्र जीवन पर कर्तक मत बसलथी । स्वामी संकराचार्य परम जीवी और भारती के रक्षण के लाला थे यः उन्हें इन बातों का उत्तर देने के लिये पर वह समय के अनुभव से तब कभी नहीं कलाय गइ । उन्होंने भी उत्तर

आयतुहुन समीपान की उस रति किा में मुन से मुन मिटा कर.....
.....

इसार्थि आर्यवीज प्रमाणी में पूरी विधि दहलिये जिस की कि सोन चुक
के, दूसरा के धर्म न करे जैसा कि—

राहि की भरमारमंले प्रेषहीनामुज प्रजाः ।

ता इमे अमिनु' काया उपकारनि तां प्रभो ॥ अथ० २१२०१२२

आयतु पुराण के इस प्रमाण का धर्म लिखना उचित नहीं । जैसे इस
प्रमाण में राधियों का पाप लिखा है । इस धर्मों की रोक पाप के लिये
वैदिकधर्मों में कथार्थ अनुमन विधि कर देना आवश्यक था । सोनि
संकोचन भी वैदिकविधि होने से इस पवित्र संस्कार का पाप है धमाः—

विष्णुधर्मि कलपयु लक्ष्य कर्वाणि रितायु ।

आतिथयु उज्ज्वलिपाता गर्भ' कथयु ते ॥ अथ० २१२२१२

पर्यताद्विभीमोमेरमाज'कायु समाभुतयु ।

तेषी गर्भमरेतीयाः तारी पर्यनिमा कथयु ॥

यथैव दूषिषी महीभुजाकां कर्ममात्यये ।

एवावधामि ते गर्भ' तत्तवीवाक्ये तुमे ॥ अथ० २१२२१२,२

इन समस्त धर्मों में की कुछ लिखा है । जगता संकेत कथार्थ प्रकाश में
लिखा गया है । कोई नई बात नहीं लिखी । किन्तु पाप की महीधर के
मात्र की कथार्थ मानते हैं बहुत धर्म के धर्म करते हुए वह कुछ लिखा है
जिसकी रंभ भी वैदिकधर्मों में नहीं है । इनका प्रमाणों में से महीधर का
एक प्रमाण ही लीजिये ।

महिषी स्वयमेवावशित्वाकृष्ण स्व लोले स्वावयति । बाजी करवी
रेली रमायु, मधिधीर्य' स्वावयतु—रेलीवा जीर्णस्वधारविता ॥ ययु० महीधर
मात्र २३।२०

महीधर के इस माध्य में जिलमाकृष्ण = धार्मिकता अथ लोहुर है किन्तु
पवित्र संस्कार आदि में जोले कर क्या करण ? अतः वह वैदिक धर्म नहीं
अनुवर्तमान है । इस अर्थान्न में की धर्मों का धर्म महीधर ने किया
है परमात्मा धार्मिकता को दहले कथावे ।

मानने इस बात पर बहुत बल देकर लिखा है कि अज्ञान के संभव
आदि की इस विषय पर लिखना उचित नहीं था । किन्तु इसका उत्तर भी
आपने कर्तव्य ब्रह्मचारी स्वामी संकराचार्य की अटना लिख कर स्वयं दे दिया

है कि ब्रह्मचारी भी वेदादि शास्त्र पढ़कर राष्ट्रभक्ता के लिये उत्तम ज्ञान संसार को दें। एतुओं की कष्टही भ्रम के लिये संसार के मनुष्य नहीं र पुत्रों मिल और लक्ष्मण से ज्ञान नमन बना रहे हैं। पुनः मनुष्य स्नातक का निर्वाण उत्तम शास्त्रीय रीति से क्यों नहीं होना चाहिये? महाराज ! विचार कीजिये और ब्रह्मचारी तथा ईश्वरीय की छोड़ दीजिये। तत्काल धर्म ही महामारुत में सभी जीवनों की ही वास्तविक भाग्यता है जो वहाँ बुद्धिभिर ने सर्वत्र ब्रह्मचारी नीतिप्रकाशक से यह सर्वोपर दुष्टा कि—

स्त्रीपुंसयोः संश्रयोने तयोः कल्याणिकी भवेत् ।

एतन्मित्रमैकमेव राज्यम् यथाशब्दमनुमर्हति ॥

स्त्री पुरुष के परस्पर संयोग में अधिक व्यापक प्रयत्न किये होती है ? है महाराज ! मेरे इस संभव की दूर करने के लिये आप यथाशब्द उत्तर दें।

बुद्धिभिर के इस प्रकार बुझने पर सर्वत्र ब्रह्मचारी नीतिप्रकाशक ने कहा—

विश्वतः पुत्रसंश्रयोने प्रीतिरभ्याधिका भवति ।

रमिताम्बुधिरिव स्त्रीलोकस्तर्पयैवमलम् ।

एवं विधयाः महाराज अधिका प्रीतिरभवति ॥

—समुदासन वर्ष १२१, २२, २४

नीति भी ने स्त्रियों के पक्ष में निर्णय दिया। तुरे स्त्रियों के सर्वश्रेष्ठता लक्षित नहीं। नीति भी ने यह बड़े बड़ा दिया ? और बुद्धिभिर जैसे गुरुमुखी की एक सर्वत्र ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य शास्त्र से बुझने की क्या आवश्यकता नहीं। हम धर्म नीति ही देखी देखी महामारुत और पुराणों की कथाओं की वेदी तथा शास्त्रों के विरुद्ध समझते हैं किन्तु आपका विश्वास ही सत्य र पर है इसका उत्तर आपने पास कुछ भी न बन सकेगा। छोटे के बहुत में बैठकर कोसाही किए पर पत्थर पेंडना कोमा की बात नहीं। भद्रवाद के शास्त्र पर समापन धर्म के माने देने सभी का संश्लेषण वेद शास्त्र के आधार पर कीजिये ही सत्य की आदेशमात्र के आधार को मानने सब जानेंगे और अहि दधानंद के मुगलरक प्रयत्नों का व्यवसाय भरे। परमात्मा आपकी सत्य ब्रह्म की शक्ति है कि आप अहि के शास्त्र में मिले यह शास्त्र शास्त्र में कि मैं स्वामी दधानंद की पठित संस्थाही धोचिन करता हूँ—

यद्यपि हमें स्वामी भी के मनुष्य होने में भी शक्य होना है ।" पुनः ११, १२

कलसे कुछ कुछ न माना

कल्याणमा से करो। उसकी पक्षी और पक्षी है किन्तु भीष के एक

देती है । उन कान्नों के सामने मैंने खीर उन पर आगमिष्य करने में ही पालकी
पायस का भसा है । मानी व मानी करके हृदय की दम ती केरी की
सामनाएँ देते हैं ।

(१५) कन्या की का विद्वाना

लक्ष्मी केसव पुरी ने अपनी इस कदवाय पुस्तक में 'निर्धन कन्या
अभिचार' का शीर्षक निम्नकर कान्ने २ उपहास किये हैं । यह उपहास
बासाक है । एक कन्या की को कोना नहीं देते । धर्म का निर्धन इन को
बाती से कोकी दुर है । सोक है कि इस कन्या पुस्तक के कान्ने उपहासों को
की संकराचार्य की कपस सुभासीजीर दे रहे हैं । क्योंकि पुस्तक के दाईर
कर ही लिखा है कि "कन्यापुत्र का सातीजीर" ।

'इस पुस्तिका की कान्ने मेरे सुभासीजीर है ।'

—भी निर्धन

सोच है कि कान्ने इस पुस्तक को भी बिना यह सातीजीर दिया ही ?
यदि ऐसा है तो कान्ने मेरे सुभासीजीर का क्या अभिप्राय ही करता है ?
सर्व्व शब्द का अभिप्राय ती यह है कि कान्ने इस पुस्तक को कपस यह
मा मुना है । जिसमें "के पापुन की म्माका" और "काहृवां कीर तेरहृवां दू"
के कीरकी के कान्ने म्माक किये हैं । क्या धर्म का निर्धन इस कान्ने म्माक के
कान्ने के होना ? मेरी सम्भत्ता यह साता नहीं देती कि मैं ऐसे कान्ने कान्ने
की यही पर उद्धृत कर । कपस है कि यह पुस्तक कुरंग कान्ने होने के योग्य
है तथा केवल और प्रकाशक पर अभिप्राय कान्ना सरकार का कान्ने ही
काता है । क्योंकि इस पुस्तक में साधुनिक पुन के कान्ने के कान्ने बड़े महा-
पुन्य कान्ने कान्ने की के विरुद्ध कान्ने कान्ने का बार २ कान्ने किया कान्ने है,
और केवल धर्म के माय विद्वान्नी पर कान्ने और कान्ने कान्ने किये कान्ने हैं ।

(१७) निर्धन कन्या कापद्धम

महर्षि यशानन्द कलकत्ती के माधवे प्रकाश में के कान्ने यह कान्ने उद्धृत
किये हैं कि—

"कान्ने और पुन की कान्ने का यही प्रयोग है कि धर्म के कान्ने केकी
रीति से बिनाह न निर्धन के कान्नेकीक करमा ।"

कान्ने यशानन्द ने के के कान्ने पर निर्धन को कापद्धम माना है ।
जिसके लिये के के कान्ने की उद्धृत है कि—

उदीर्य कान्नेकीक कान्नेकीक कान्नेकीक कान्ने की कान्ने ।

हमराकान्ने निर्धनकीक कान्नेकीक कान्नेकीक कान्ने की कान्ने ॥ कान्ने १०१॥

है (सर्वि) विषय ! नु (हर्ष वाग्युद) उस वरें हर्ष गति को प्राप्त होइ के (लेने) बाकी वृत्तों में ने (सर्वि और वीर्य) कोने हर्ष गति को (सर्वि) प्राप्त हो और (कटीक) उन वान का विचार और निश्चय यह कि जो (हर्ष वाग्युद द्वितीयः) मुक्त विषय के पुनः प्रतिपत्ति करने वाले विमुक्त गति के सम्बंध के लिये विशेष होना को (हर्ष) यह (सर्वि) । जसा हुआ बाध्यक जमी विमुक्त (पुनः) वीर्य का होना और जो न करने लिये विशेष करेगी हो यह सम्मान (सर्व) लेना होना । जेने निश्चय पुनः (सर्वि, वान्, वपुन) को और विमुक्त वृत्त को वही विषय का प्राप्त करे ।"

अनुवृत्त वर वहुला पुन १२

साथ में स्पष्ट रूप से दूसरे विवाह की प्राप्तिप्राप्त में विषय की कक्षा ही गई है । जिसे सम्मान नहीं नहीं मानते के । किन्तु जब इस सिद्धान्त की समझ नहीं वपु ने विषय विवाह के रूप में स्वीकार कर लिया है और सरकार का सामुहिक विषय विवाह के पक्ष में मत पड़ा है । वेद में स्पष्ट लिखा है कि—

"विषय विवाहम्"

पुन १३/१३/१३

इस साथ वर विमुक्त के लिखा है कि—

"वेदः सम्मान् द्वितीय वर उपलब्धे ।"

कि दूसरे वर को वेद अनुवृत्ति है ।

पुनः लिखा है कि—

"सर्वि का वर इति मनुष्य नाम तद्विषयविषयम् ।" विमुक्त २३/१३

जब मनुष्य का नाम है उसके विषय से विषय जबर की सिद्धि होती है ।

अतः वेद में विषय विवाह लिख है । की १३/१३/१३ की उनी साथ वर

विषय का सम्मान वहुन करने हुए विषयविवाह का सम्मान करने हैं । विमुक्त के टीकाकार जी सुमोचारी ने भी ऐसा ही करने का किया है । महा महावाक्य विषय विषय ने भी विमुक्त वर विषय करने हुए विमुक्त है कि विषय वरी का दुराकार ने सम्मान प्राप्त करना सम्मान नहीं है अतः उसे (सर्व) गति से सम्मान के लिये) पुनर्वृत्ति ने सम्मान प्राप्ति की प्राप्ति का विधान है ।

पुनर्वृत्ति विमुक्त गति वहुनला है । जो वान् वर में वेद एक वा की सम्मान करने का प्राप्तिप्राप्ति है । अतः सर्वि सम्मान की ने मनुष्य सम्मान के प्रमाण वेद के सम्मान प्राप्ति के विषय प्रकार में लिखा है कि—

देवराज्ञा तपिराज्ञा निष्ठा तत्त्वद् विमुक्तया ।

अनेमिन्नाभिपत्त्या सन्तानस्य परिणये ॥

अनेमिन्ने यमोक्तो भवति यमोक्तान्नाश्रयनिवृत्तम् ।

वर्तते भवतो यथा विमुक्तान्नाश्रयनिवृत्तम् ॥ अनु २३२८, २९

यहाँ २९ श्लोकों में मनु धर्मशास्त्र में त्वष्ट कय से सन्तान कय में स्त्री नियोग की आज्ञा का विधान करके लिखा है कि वह वाच्य धर्म है । यदि सम्मान हो तो उसका सम्मान प्राप्त मान्य आगया । सन्तान के नष्ट होने पर ही कोई नियोग की आज्ञा होनी सम्भव नहीं ।

अतः नियोग की विवाह की प्राप्ति ही आवश्यक धर्म और वाच्य-धर्म मानकर दुराचार से बचने का उपाय बताते हैं ।

(१८) एक या दो सम्भ्रान

विमुक्त पति पत्नी की आज्ञाओं से केवल एक सम्भ्रान उत्पन्न करने की आज्ञा दी है । कुछ आचार्यों ने दो की आज्ञा भी दी है । वैसे कि मनु धर्म-शास्त्र में लिखा है कि:—

विधवाया विमुक्तानु पुत्रात्पौत्राभ्याम्भेति ।

एकमुत्पाद्येमुप न द्वितीयं कर्त्तव्यम् ॥१०॥

द्वितीयमेक प्रजननं पापमेत स्वीकृतद्विः ॥११॥ अनु० २३६०, ११

विधवा में विमुक्त पति बहुत कामानुसार पुत्र करीर पुत्र, पौत्राभ्यन्तन करते हुए केवल एक पुत्र की उत्पत्ति करे । दो की नहीं । कुछ आचार्यों दो की आज्ञा की प्रशंसा करते हैं ।

आदि ने इसी भारतीय विद्वान्त की स्वीकार करते हुए केवल एक पुत्र प्राप्ति के लिये वाच्यधर्म कय से नियोग की कय के आधार पर स्वीकार किया है । मान्यता नहीं । आदि के अपने मन्त्र यह है कि :—

“यौ स्तिष्ठिश्च रह तस्यै विवाहः वा नियोगः च न करे चो दीक है । परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका विवाह और वाच्यधर्म में नियोग अवश्य होता चाहिये ।”

—सत्यवर्षप्रकाश अनु० ४

यह नियोग केवल एक और अधिक-से-अधिक दो सम्भ्रानों की प्राप्ति के लिये ही विहित है । सभी २ आचार्यों ने दो, दो की अनुमति भी स्वीकार की है । किन्तु यह सब बात वाच्यधर्म के आधार और विराट् की आज्ञा पर आधारित है । विमुक्त स्त्री पुत्र केवल अनुमति के लिये एकत्र होते हैं । अन्त में स्त्री नहीं है और कोई बात करवा भी धर्म विवाह है तथा काम

काइया पर काहु पाणि का ज्ञान भी ज्ञान में निहित है । केवल एक सन्तान प्राप्ति द्वारा ज्ञानपति की स्थापना ही निरीश्वर धर्म की प्रकृति का कारण है । अतः मनु महाराज ने लिखा है कि—

विषयानां निमोषानां निर्वृत्तस्तु यथा विधि ।

गुरु ययस्य स्तुषावन्मन्त्र यतोवाचा परमपरम् ॥१६२॥

निवृत्तौ भी विधिं हितान्मर्त्यवाचां तु कामतः ।

साधुभी वसिली स्वातन्त्र्यं स्तुषा गुरु कल्पसी ॥१६३॥ मनु ६।१६२, १६३

विषय में निरीश्वर के लिये उपवासविधि निवृत्त होने पर दीयी, गुरु और गुरु श्रुति की प्राप्ति परमपर बलीय करे । जो सभी गुरुय निरीश्वर की आज्ञा का अनुसरण कर के काम वाचना के सभीन व्यवहार करें वह दोनों पक्षित माने जाकर गुरु गुरुयन्त्र के दुराचारक दंड के भागी बनें ।

अतः निरीश्वर का विद्वान्त कर्मकाचारक के लिये नहीं है । केवल धारद्वर्ग है और एक वा अधिक से अधिक दो सन्तान की प्राप्ति के लिये है । विद्वान्ती व्यवस्था राम्द और वनाश के भागीन है । कभी २ वह व्यवस्था दो २ के लिये भी हो सकती है ।

(१६) कल्याण की सत्ता

वेद में सत्तंत्र कल्याण की अपार महिमा वर्णित है । पुनरपि सारा संसार इसका अनुगामी नहीं हो सकता । अतः कल्याण धर्म की प्रकृति हुई है और धारद्वर्ग में निरीश्वर की भी आज्ञा वेद कायम प्रतिपादित है । कल्याण और निरीश्वर में कम-से-कम सन्तान की आज्ञा है क्योंकि वेद में बहुत सन्तान की शिक्षा भी मौजूब है । लिखा है कि—

बहुव्रता निष्कृतिमन्त्रियैः । अथ०

बहुत सन्तान वाला व्यक्ति दुःख कभी नरक का भागी होता है । कईक कष्ट में रहता है । सन्तान संख्या पर भी निरुन्धन की आवश्यकता विनिवार है । किन्तु कृत्रिम उपायों से नाना-व्याधियों और दुराचार की प्रकृति करणा मुक्ति-मुक्त नहीं । अतः बहुव्रत ही इसका राम राख-महीयण है । वेद में दश तक सन्तान प्राप्ति का अधिकार दिया गया है किन्तु वह अन्तिम अवधि है । अतः इसके लिये नहीं है । काक्यवंचाद कल्याण जग की अधिक सन्तान उत्पन्न करके निन्दा के पाप करते हैं । निरीश्वर में ही बहुत ही बड़ा नियम है कि निरीश्वर का अधिकार सभी सभी पुरुषों को नहीं देकर किसी राष्ट्रीय यावर्ति की स्थापना के लिये ही राम्द जमा दसका निर्णय कर सकती है । वह भी

केवल एक सम्मान तथा अधिक-से-अधिक को सम्मान का विषय है । यदि इनका अर्थ ही जाय और वह किसी प्रकार के मृत्यु के नाश में चले जाय तो सत्य सम्मान की भावना की व्यवस्था समाप्त और राश्ट्र के सकल है । जिसकी अवधि इस के अन्तर्गत ही निहित है । इसी प्रकार के अन्तर्गत तथा राश्ट्र का किसी राष्ट्रीय अल्पता के निराकरणार्थ आनन्द के सम्मान परिधान तथा प्रति परिधान होते जाने की अवस्था में ही अधिक-से-अधिक दण्ड की भावना दे सकती है ।

(२०) अपने पैदा करने की मशीन

दूसरी महोपपन्न कहानि करते हुए लिखते हैं कि—

अब क्यों तीन सम्मान ही क्यों एक अन्तर्गत होने हुए ? दूसरे करते ? दूसरी बात यह है कि भारतीय परम्परा मारी की अवस्था (देवी) मानने की रही है किन्तु स्वामी स्वामी ने उसको अपने पैदा करने की मशीन मान लिया ।”

गहले पर गहला पु० १३

अबने सबों का ही एक अन्तर्गत स्वामी केवल पूरी अपने ही सबों में अपने ही इस के लेना चाहते हैं तो सन्धि पुराण अन्तर्गत पर ४ अन्तर्गत २२ की गई । वहीं गृहपति की सभी तारा की अन्तर्गत के तथा या और गहला के तारा गृहपति की सन्धि विस्वासी तो गहले अन्तर्गत पर अन्तर्गत और गृहपति का अन्तर्गत ही तथा कि यह किसी विस्वा अन्तर्गत । क्योंकि बुद्धि दोनों और से ही गई । अब दूसरी की ही बताते कि इनके सबों के आधार पर अन्तर्गत होने हुआ ? दूसरे १ करते ? लोक । अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत पर लिखते हुए ही से बहुत में अन्तर्गत अन्तर्गत बहुत पर अन्तर्गत अन्तर्गत से अन्तर्गत ही नाश हुआ ।

सभी की बात भी तथा ही लिखि कहती है । अपने ही विद्वानों की अन्तर्गत का अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत है, यह ह्य पर अन्तर्गत है क्या ? अपने ही माने हुए अन्तर्गत में लिखा है कि अन्तर्गत अन्तर्गत के साथ अन्तर्गत पुन के तथा की अन्तर्गत भी ने अन्तर्गत से पुन अन्तर्गत की अन्तर्गत की कि—

सौम्य भाषा विमुक्तता पाके पुनमुक्त विभी । देवी भाषक ४२३।२३
तब लिखती के पर दिया कि—

अन्तर्गत अन्तर्गत पुन अन्तर्गत अन्तर्गत । अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत । अन्तर्गत पुन अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत ।”

देवी भाषक ४२३।२३,२४

यह भाषक विद्वान्त है । अन्तर्गत ही ऐसे अन्तर्गत अन्तर्गत कि

१९०६० × १० = १९०६०० एक लाख आठ हजार तीन सौ सन्नाह की राशि संभव भी है या नहीं ?

ये प्रश्नो जो मे विनीत प्रार्थना करता हूँ कि दुकानें २ करना तथा सभी बहीन इत्यादि के जर्जों को वापस में जो सम्झ है ।

(२१) जलखी लाश

प्रहरी जी विचारते हैं कि :—

वाक्य १ ध्यान दीजिये । वेद मंत्र का कार्य करता हूँ, स्वामी जी मे विचार—हे भिक्षु ! तू इस धरे हुए पति की माता छोड़ के (इसका मतलब हुआ—वह जी माँके साथ पड़ी हुई है) इसकी माता छोड़ करके अन्य किसी पुरुष से विवाह करे, माँकी कि खुले विवाह हो और बाद में माँ कुली जाय । नहीं तो फिर लोक के समस्त यह उपदेश देने का क्या मतलब ? मैंने महाशय जी विचारते हैं कि-----”

बहुते पर बहना पु० १५

“माँकी कि बहुते विवाह हो और बाद में माँ कुली जाय” यह और इसी प्रकार के समस्त विचार स्वामी केकनपुरी ने सब का मुख हीड़कर रखा दिया है । पौराणिक ब्रह्म सर्वव्यापी जी महाशय का सम्मान करने की दृष्टि से ही स्वामी जी को महाशय की विचार और कहा करते हैं जो धारने भी ऐसा ही किया है । पुराणों में भी किसी क्षत्रि मुनि और महामुन्य को प्रत्येक सम्मानित करने से नहीं छोड़ा गया वहीं विचार्य हमें मार छोटी से भी है । यह धार धारने माने हुए क्षत्रियों की प्रति पुराणों में देखते हैं जो क्षत्रि दयानंद का सम्मान करने से भी धार लेते नहीं चूकते । यह धार की सम्पदा धारको ही पुनरावृत्ति है ।

रही यह बात कि लाश धारने पड़ी ही और उसकी विचार सभी को ऐसा कहा जाय । यह धार क्षत्रि दयानंद के नहीं है । आकरतु कारण का नियम है कि—

सर्वमान्य माँकीले सर्वमान्यता । अर्थ = ५५५१५१

सर्वमान्य के समीप मरत ५१ व्यवहार भी सर्वमान्य की राशि होता है मरत कुछ समय और करने पर समाप्त और गान्ध का नियम सम्मानमान्य में लोक विज्ञाना परिनिहीमा सभी के लिये ही यह व्यवस्था करे । यह वेद के जर्जों में ही पकट किया ।

किन्तु माँकी माने हुए सभी में यह मंत्र का विविधोप सम्प्रेषित में किया गया है ऐसा कि सम्मानमान्यता पुन में किया है । इस मंत्र का सम्मान में

धनस्वीभित्तमं का धिनिधोष वमत्ता है । क्योंकि मय का इतिराय भिन्न निरु-
मेय है और विपरीत की कृत्रिम प्रका से होती है जैसा कि किम्बुराण में भी
लिखा है कि—

चित्तः प्रजया तुल्य इति हि यन्तिरजयीत् ॥

किम्बुराण कीलाल सहिता अ० १२ श्लोक २६

चित्त प्रजा से तुल्य होते हैं ऐसा भुनि कहाँ है । सदाः समान प्रान्ति
निरुमेय है । समान कर्म का नाम निरुमेय नहीं है, उसे वरमेय कहते हैं ।

सायनाचार्य ब्रह्मसूत्र की निःसुरीयकारण और अनुस्तरणी के सिद्धान्त
की मानता है जो वेद के सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है कि वाय या बहरी के
एक २ अंग को काट कर मूल बरीर उषी २ अंग पर रहा जाय और उषकी
अंग से सुर्व की हांफार उसे बर्षों के साथ स्वाहान्त प्रणिदाय किया
जाय ती—

य एवं निदानश्रुत्याः सहैव धूमेन स्वयं लोकमेकीतिह् चिन्तामयी ॥

सायनाचार्य ब्रह्मसूत्र अ० ४ अं० ४

इस प्रकार वे कीलाला यत्त धूम सहित स्वयं लोक की प्राप्ति होता है ऐसा
जाना जाता है ।

शुचि दयार्णव में इस कीलाला का सुधार करके मय का बर्षार्थ
विनिधोष निरुमेय में करके उसे समान प्रान्ति में लयाया है । किन्तु सायना-
चार्य के ही तीतिरीकारमक में इसी मय के अर्थ समान परक करते हुए
लिखा है कि—

हे वारि त्वं इत्यनुवतमात्तं एतं वति उपलब्धे उपलब्ध समनं करोति इदीकं
अन्यामवतिसर्वादाहुतिष्ठ जीकनीकमनि जीकनं प्राप्तिममुहन्नि लभ्य एहि
आनन्द त्वं ह्येत वातस्य वाहिवाहवतः विधिनीः पुनविद्विष्योः वस्तु
एतज्जनिमं आपातं अनिर्वाक्यं वनिमुक्तेय सम्यक् प्राप्नुहि ।

तीतिरीकारमक ६।१।४

हे वारी ! तू इस निम्न प्राण, मूल वति के साथ होती है, इस वति के
समीप के उठ और नीचे प्राप्तिममुह में के वनिमध्य करके का और तू
पुनर्विवाह की दृष्टा जाने वति की वस्तु प्राप्ति के लिये सम्यक् प्राप्ति हो ।

जो सावदायी के इन वर्यों ने स्वाकी केचन दुरी के नहने पर बहता की
वेकवर कर जिहा और पारी काके निरु निरा दिया ।

अपना ही दीध अपने घर में के ही निकला । शुचि दयार्णव पर जो स्वयं

लोक लेते हैं क्योंकि उन महात्मज ने ही देशों के जनता की हठ को दबाने की चेष्टा की थी । सब जानते जिसने उनका जूति ध्यानन्द पर विषे पड़ घरेने पर मचाईने ही इन जनों का वास्तविक मुख्य काम ही जान ही जान ।

आपके विषे ही किसी कवि ने लिखा था कि —

अतिहा ! मत कर नलीहल मुझे मिल मेरा बखरावे है ।

मे सम्झूँ हूँ उसे कुमल जो मुझे बखशावे है ॥

(२२) इतिहास की साक्षी

“कहिने महाजुमाबी ! देस निवा न जाचने निजीव का उमादा, स्वामी दशरथ ने मुमलमाबी के निकाह पर वेद का सुममल चढ़ा दिया जिससे कि हिन्दुओं की मनमाना अधिचार करने का परचित मिल जान । — पृ० १५

स्वामी केवल पूरी मुमलमाबी के निकाह के सम्बन्ध में ऐसे कड़े हथ लिखते हुए भी इससे आगे अपनी पुस्तक के इसी पृष्ठ १५ पर मौलवी संजाम आली का मजिस्ट्रेट का कोई निर्णय लिखते हैं जिसने जूति ध्यानन्द की मजहूरी की निन्दा करने वाला बताया है तथा वाक्तर बीबी बीरोपिदल ने जूति के विरुद्ध निर्णय दिया । यह समाकथित निर्णय मही लिख करते हैं कि यह बीबी मजुपि के अतिशारी घोषाओं से कले-कुले से क्योंकि जूति ध्यानन्दजी वेद के साधार पर राष्ट्र की एकता के हूथ में खचित करने के लिये फलसीत थे । अतः यह इन बीबी की एक मौल भी चढ़ा गहो हो सकते थे । क्योंकि वेद के काले ज्ञान के उभावित भारतीय जीव इनके मजहूरी कुंषल में गहो पल सकते थे ।

आप जूति ध्यानन्द की इसी निन्दा न करें । इस ईश्वर मुमलमाबी के साथ मानदारी में स्वतः निष्ट चुके हैं, मजुपि के विचार बदल चुके हैं । धार्मिकता का यह कम बन्द नहीं होता । आप अपनी निन्दा करें जिसके देवी-देवताओं पर ईश्वर पादरी और कुछ मौलवी अपनी पुस्तकों में अड़े ९ पाछल मना चुके हैं और आप ने उनका उत्तर नहीं बन सका । समानत धर्म के देवी-देवताओं के विरुद्ध जिसे ऐसे ऐसे हथ आनी एक भारत में लिखने गये का गदे हैं । गीतास्थिक पवित्रों के माहल होता ही उलका उत्तर लेते । मे आज ! कि आपकी बुद्धि उन मजहूरी की समझ सके कि कुछ एक विपक्षियों की हृष्टि में धार्मिकता इनलिसे गठकता है कि इन उनके भारत को ईश्वर आदि बनाने के स्थान को गठकर होवे देने में सहाय है । यह आपकी धार्मिकता के विरोध करने में गठार लेते रहते

है । क्योंकि उनका अन्तर्गत् अभी में निहित है ।

पुनः महात्मा गांधी जी के एक बार मुक्ति और आर्यों की बराबरी कायमप्राप्ति के कारण आर्यसमाज की अनिष्टिपुत्र कह दिया था । आर्यने इसे संभाव्य कर दिया और वैरागिष्ठ पश्चिम महात्मा गान्धीजी की उक्त वाक्या की मान्-मुपपन्न की गये जो उन्होंने मुक्तिपुत्र के विषय ही भी कि मेरा मतान मेरे हृदय मन्दिर में मौजुद है । मैं मुक्ति में एकही पुत्रा करनी इच्छित नहीं समझता ।

आर्यने महात्मा गांधी जी के सम्बन्ध में इसी पुस्तक में यह भी लिखा है कि—

“साधक यहाँ यह कहाने की जरूरत नहीं कि महात्मा जी बहुत कुछ अनुभव करने के बाद ही किसी भी विषय में अपनी राय कायम किया करते हैं, इसलिये जीवन भर में उन्हें अपनी राय की बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।”

पृ० २१

महात्मा गांधी जी का निर्णय आज के सभी उनके अनुभव के आधार पर होने से ज्यादा कम होता है, जो आज की इस पुस्तक के मुख्य विषय मुक्ति-पुत्रा पर उनका निर्णय आजकी अवस्था स्वीकार करना चाहिये । जो उन्होंने महास की रेणियों की करवरी १९४५ में दिया था । उन्होंने कहा था कि—

“मेरा मतान विल में रहता है, बाक्यों में नहीं ।

महास १० करवरी—आज कुछ रेणियों के गांधी जी की मुत्सीयर हृदय और अन्य रेणी-देवताओं की मुत्सीयों केत की । इस अवसर पर गांधी जी ने कहा कि आज नहीं जानती कि मेरा मतान् करवरी और आज मुत्सीयों में नहीं रहता । मैं इन्हें रेणी-देवता नहीं समझता । मैं उनकी पुत्रा करता हूँ जो कीरे विल में रहता है और सभी मनुष्यों के विल में रहता है । मैं इन मुत्सीयों की इसलिये स्वीकार करता हूँ कि इनकी हरिजन पोट के विवेकीताम कर हुंवर ।” महास मध्वीर १ करवरी १९४५ (मुनाईटिड रेक)

कहिये महाराज ! अब आपकी क्या राय और सम्मति है । महात्मा जी के चिर दास के लोके-मन्त्रके अनुभव की आज स्वीकार करते हैं या नहीं ? महात्माजी ने आर्यसमाज के विद्वानों का भंडन कभी नहीं किया । एक बात की बात कर्तव्य स्वरूप रही । आर्यसमाज में महात्माजी के ईसाई मुत्सवतानी की इच्छा करते के हेतु कहे गये आर्यसमाज धर्मकधी कुछ मन्त्री का भी मोर प्रतिवाद किया था । क्या आज नहीं जानते कि यह सब कुछ

(२) दक्षिण पर्वोऽवधनिबलः । मनु० २।११०
निधोष पर्व है ।

(३) उत्तरे पर्वोऽवधव्यापि साधुं शक्तिं समकलयन् ।

साधि पर्व १०३।२६

भीष्म ने सहाय्यता से कहा कि मैं तुम्हें साधिवर्ग का सहायन करने
चला हूँ जो निधोष है ।

(४) धर्ममुद्दिश्यकारणं ॥४०॥ इष्टं ह्येतत् समकलयन् ॥४१॥

साधिवर्ग १०३।४०, ४१

निधोष सहायन करने है जो दृष्ट है ।

उत्तर के सभी समाहारों में निधोष का प्रकरण चल रहा है । निधोष की
वर्षा में ही सर्वत्र इसे चर्चा किया है ।

(२३) निधोष आशा से होता है

कर्मभिश्चक्षुष्य मुच्यते पति मत् । आ० १०।१०।१०

इस मन्त्र में वेदाध्ययान् पति कर्मवी स्त्री को प्राप्त पति से सन्तान प्राप्ति
की आशा से ऐसा किया है ।

गमिनीधाम्महासाहो कर्मकर्तुमर्हसि । साधि पर्व १०३।११

सहाय्यता ने सोम्य की भविष्य तथा संभावितता में निधोष की आशा की
उसके प्रकार पर बहुत व्यास ने निधोष द्वारा दोनों में भुतराष्ट्र और पति
की सेवा किया ।

इसी प्रकार से महाभारत साधि पर्व में महर्षि व्यासजी ने निधोष का
विवरण पूर्णक वर्णन किया है ।

अतुषां पुर्वमुज्जाली देवत-पुत्रकाम्यया, तस्मिन्नी वा स्त्रीषो वा वृताम्यक्त
वृतामिनात् ॥ गणपुत्रास्तु आचाराभ्याम् १३।१६

गणपुत्रास्तु के इस मन्त्रिक में निधोष की स्पष्ट आशा है कि पुत्र की
आशा से सन्निध कर्मका स्त्रीय देवत पुत्र से पुत्रका हुआ होकर पुत्र कामना से
पुत्र रहित स्त्री में अतुषयन करे ।

(२४) निष्पुक्त पति

साम्येवादि के महापुत्रक उद्देव वाच्य धर्मकर्म से निधोष धर्म का वाचन
करते रहे हैं । देखिये:—

(१) सन्निध संभावितता के निष्पुक्त पति बहुत व्यास हुए, पति
तथा भुतराष्ट्र की उत्पत्ति हुई ।

गुप्त कालजी में ईसापूर्व-१८०० पर जुमविवाह का कारण बड़े नास्तिक लोगों में किया है ।

अरुणि दयानंद सरस्वती जी महाराज ने अपने एक पत्र में लिखा था कि निषेध करने वाले सभी पुरुष दो से अधिक सम्मान उत्पन्न करें ही वह दुष्टाचार माना जाकर संतनीय होना । अतः अरुणि के प्रति आपके लाल वर्णका मित्रता है ।

मायार्थप्रकाश में भी लड़का और लेने का विधान लिखा है । निषेध की अन्तिम समस्या माना है । जिसकी याद राष्द्र और समाज के अधीन है ।

(२६) बहुते पर बहुला

स्वामी केवलदुरी की पुस्तिका समास्थिक, अनुपमूल और आन्तिमी से भरपूर है । उनमें साहज होता ही वेद कर्मों द्वारा ईश्वर की मूर्ति और उसकी पूजा का विधान विद्व करते । वह अपने प्रसंग से बाहिर बने गये हैं । अन्धका प्रतिदुष्टा के प्रकाश में निषेध का प्रकाश जाने का क्या काम का ? स्वामी केवलदुरी महाराज नाथी को प्रकाश मानते हैं । अरुणि ही निषेध कर्म की अन्धकर्म मानकर सम्मान प्राप्ति के लिये इसका समर्थन किया है । प्रकाश की बहुविध व्याख्या महाराज के निषेध करने का विषय है । समाज कर्म ही अरुणि व्याख्या की अन्धका मानता है अतः अब बहुते पर बहुला का साथ नया उत्तर जाना चाहिये । जबकि वेद, कर्म शास्त्र तथा पुराण सभी निषेध के आन्धकर्म होने के समर्थक हैं ।

अपनी पुस्तिका में स्वामी केवलदुरी ने एक जीवंत बहु की दिया है कि—

क्या पुराण बहुलाये की कल्प है ? मुझे बड़ा शोक है कि लेखक महोदय करते ही कर्म पुस्तकों के सम्बन्ध में ऐसे अवकाशों का प्रयोग कर रहे हैं । मैं ही उस अनीधी सम्मता का प्रतिवाद करता हूँ । बाहे पुराणों पर मेरा विश्वास कुछ भी नहीं । किन्तु किसी भी कर्म का नाम लेते हुए ऐसे कर्मों के प्रयोग की मैं सम्मता नहीं मानता । जोरास्तिक जाईयों की भी इन कर्मों का प्रतिवाद ही करना चाहिये । अवदुष्ट संकराचार्य ने अपने घासीचरि का नाम ऐसी पुस्तिका की समझ की बहुविध दयानंद जैसे वाले हुए आर्थशक्ति के महादुष्ट की वास्तिक लेने के साथ २ पुराणों के लिये भी अवकाशस्थिक जीवंत से अपनी सम्मता का प्रकाश दे रहे हैं । मानना चाहिये कि अवदुष्ट के कुल ही गई है । अन्धका इस पुस्तक में वासी लेने और आन्तिमी के प्रति-रिक्त और कुछ नहीं । मैं आशा करता हूँ कि समाज कर्मों माई देरे लाल सर्वथा बहुला होने ।

इस लीन्य के कारण यहाँ के राजपूरी ने तुरे इन गुरुओं में यह मित्र करने का दान किया है कि उनकी ही का कोई एक भी मोहनस लीन्य के विषय में यह इत्यादि के साध-साध एक साथ साथ करने की प्रस्तावना अपने विना राजा मोहनस के सम्मुख प्रस्तुत करता है। किन्तु राजा ने इस प्रस्तावना को स्वीकार नहीं किया। अतः यह केवल एक मोहनस लीन्य की ही बात है। किन्तु पुराण में तो यह भी लिखा है कि—

एतेषां नांनं परमं च मोहनसर्षं च कारणम् ॥६२

किं प्रस्तावनायास द्वाराणं ॥६४

राजा मोहनसर्षो वदुषः कारणं मुदा।

मिमगतां च सर्वं च कारणं च मुदायता ॥६२

इदानीं पुराण कृत्य कम ४० ४, अध्याय १०२, श्लोक ६२-६२

इस प्रमाण में राजा के प्रस्ताव विना होकर किसी की वहाँ सर्व सामग्री बुझाने का बर्णन है। तथा द्वाराण में कृष्णजी की बुझाने के हेतु एक द्विज विष्णु की वहाँ भी है। अतः स्वामी केवल पुरी का वह गुरुओं का परिचय धर्म गया है जिसमें वह पुराण का एक चर्चा भी प्रस्तुत नहीं कर सके कि स्वामी की प्रस्तावना को राजा ने नहीं माना। अतः पुराणों की वेद विषय मान देने में ही कार्यवाही का उद्धार सम्भव है, सम्भव नहीं।

(२६) इनके की जीत

राजा के विषयी बहुतों पर एका की जीत की सर्वोपरि स्वीकार करते हैं। वे राज के केवल का अनुमोदन न होने के कारण इसका का अधिकार एका के सर्व में होता है। केवल का परिचय कार्यवाही की फूट है। केवल एक परीक्षार की उपलब्धि से ही इनका = एका सम्भव है। वस सर्वकार है इनका = एका की ही वस है। एका एक परीक्षार की उपलब्धि का कलकत्ता में परिचय है। अनेकविध देवी-देवता की पूजा का परिचय फूट है। इस समय की उपलब्धि महापूराण में भी स्वीकार करते हुए लिखा है कि—

अहम्मयानि तीर्थानि च देवा भुविद्विजयताः।

ते पुनस्तुभ्यस्तैव संन्यासेन साधयः ॥६१

नास्तिकं सुषी च च वदतारका न भुविनं सांस्तुभ्यस्तैवसाधयः।

उपासिता केवलजी इत्यनर्थ, विविधतोनन्ति मुहूर्तविषय ॥६२

परशामबुद्धिः भूतानि विद्यायुक्ते स्वर्गः एतद्वर्णिः भोग्यं सुखधीः ।

परशोर्बुद्धिः कालेन कर्तृविमलनेपाधिर्बु स एव मोक्षरः ॥१३

भाष्यगत पु० १०।२०।११-१३

उपमन नीच नहीं होते, बड़ी धीर पत्थर के बने देवता नहीं होते । वह नीचे-ऊपर तक घुबले से भी पवित्र नहीं बनाते, साधु लोग दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं ।

धर्म, सूर्य, चन्द्र, तारे, बुद्धि, जल, आकाश, वायु, आग्नी, मन आदि की उपासना से पाप नष्ट नहीं होते । वह मोक्षदत्त — छूट पैदा करते हैं । इन की उपासना का परिणाम छूट है । बिद्वान् ही बृहत्सं मर की सेवा से प्रत्यक्ष होकर पापनाश का उपाय बताते हैं ।

पाप नाश का उपाय बताया केवल विद्वानों के उपदेश से ही सम्भव है । वह देवी-देवताओं से यह शक्ति नहीं ।

वाटनिष्ठाकपात्मक शरीर में जिसकी आत्म बुद्धि हो, सभी आदि में जिसकी स्वबुद्धि हो, बुद्धि के बने पदार्थों में जिसकी उपास्य बुद्धि हो तथा जल में जिसकी तीर्थ बुद्धि हो वह कभी भी ज्ञानी पुरुषों में नहीं प्राप्त हुई ही मोक्षर है ।

वाक्यत्र वेद बुद्धि सर्वभूतेष्वस्थितम् । भाष्यगत ३।१२।२३

जब तक मनुष्य सर्वभूतक परमात्मा की बुद्धि रूप में नहीं प्राप्त करता तब तक उसकी बुद्धि नहीं हो सकती ।

वह भागवत पुराण के प्रमाण सिद्ध हैं । देवी भागवत पुराण में मुनि-पूजा की आधुनिक धीर बुद्धिकाशीन बताते हुए लिखा है कि—

प्राप्ते कलाचक्रं बुद्धयस्तरे च काले, न त्वां भजन्ति मनुजा ननु पश्चित्तरे ।

धूर्तः पुराणचक्रुर्देहिनिकराणां केवलपरायणवृत्तिरा निमित्तानाम् ॥

देवी भागवत ३।१२

हे देवि ! दुष्टतर काल काल का जाने पर मनुष्य तेरी पूजा नहीं करते । पुराणचक्र पृथ्वी से बनावे गये हृदि, जंघर आदि देवों की सेवा में मनुष्य उत्पन्न ही गये हैं ।

देवी संकुलवामना उत्पत्त्यादाहो रिपुः ॥१२

वदमराजमर्षी मुनिं स्वाध्यायान्न धामयः ॥१३

विकारं बहूनी पुत्रां पशुः सर्वोपनिर्जराः ।

तथाप्यन्ति देवानां भीरवी कुलदीपताम् ॥१४

शिल्पं विष्णुजनशेखरं पूजयामास वाक्यतः ४१३

देवी माघकृत ६।६।६१-६४

इन्द्र ने देवी की पूजा की जिसकी कृपा में जड़ को मारा । यतः हीरे कणों से अटिष्ठ देवी की मूर्ति इन्द्र ने स्थापित की । समस्त देवता तीन काम की मूर्तिपूजा करने लगे, तब से देवी ही देवताओं का कुल देवता माना जाने लगा और इन्द्र ने तीन लोक रोषध विष्णु की पूजा भी की ।

बुद्धकाय में ही इन्द्र के इस मूर्ति-पूजन का आशय है । क्योंकि शिखा है कि :—

बुद्धं कृत्स्नं विराट् सुविचित्रं प्रतारितम् ।

केतप्रमाणमुत्तुम्भ स्वीकृतं घौषांमसम् ॥ देवी माघकृत ६।७।२८
इन्द्र ने मुनियों से उसे पड़े बुद्ध की छल से मारा और केत के प्रमाण को स्वीकार बुद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया ।

अतः कथैकविध मूर्तिपूजा का परिचय करते हुए इनका = एक परमेश्वर की कल्पना से कभी एकता प्राप्त कर वैदिक धर्म की यह ध्वनि के ही संसार का मर्यादा है ।

(२४) भारतीय-संस्कृति

जड़ देवी देवों की पूजा भारतीय संस्कृति कदापि नहीं । इसकी वाणी कलात्मक धर्म के प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् काशी विद्वद् परिषद् के पूर्व प्रचार म० म० पंडितराज श्री गोपाल ब्राह्मणी दर्शनवेत्तरी अपनी भारतीय संस्कृति नामक पुस्तक में के रहे हैं । श्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रचार ने प्रकाशित की है । श्री रामचन्द्र 'पुष्प' साहित्य मन्त्री ने इस पुस्तक के प्रकाशनीय में लिखा है कि—

"प्रसिद्ध गोपाल ब्राह्मणी दर्शनवेत्तरी भारतीय-संस्कृति के आदर्श प्रतिनिधि ही नहीं, उसके प्रामाणिक लेखक एवं गंभीर विद्वान् हैं । उनकी यह पुस्तक भारतीय-संस्कृति के सभी पहलुओं पर पूर्ण प्रकाश ही नहीं बाली प्रवेश करने की प्रेरणा भी देती है ।"

इसी पुस्तक की छठी २ प्रस्तावी प्रयोग कलात्मक विचारों ने की की है । इसी भारतीय संस्कृति में जड़ देवी-देवों के धर्मों और पूजा का और संकेत करते हुए लिखा है कि—

.....इसी से आज भारत में देवों की ही नहीं मनुष्यों की भी मूर्तियाँ मन्दिरों में पवरा कर तरह-तरह के रीतिरिवाज से सृष्टि हिन्दुओं,

निर्धन कीर कुँडों की (दूरकन) उलगा घर्मे हो गया है : प्रायः सर्वत्र भारत में इन कुँडों का निवारण प्रचलित होना चाहिये । और इसका निर्वहण हम समाज के धर्मोपस्थापकों को कर सकते हैं । यह हम लोग धर्म नहीं कर रहे हैं । सर्वत्र भारत में यह धान, जूने, कपड़, दम्य नहीं पाए, कलः सब पुनः भारत के सर्वत्र होने के पराधीनताकासीय यह प्राथमिक किराया उठ होना चाहिये । घर में भाव, कसूर, पति, कल्याण रोनी एक का सनावर कर हमारा इसी-समाज केन्द्र के सन्तान जायता । घर में सना नहीं । और यह कुँडों लक्ष्य रहा है, घर हमारा समाज धर्मोपस्थापकों के लिए बहुत में कासी, नकर और कुँड में प्रमाण, हरिद्वार, कल्याण का नास्तिक सन्तान जायता । यह धर्म नहीं धर्मोपस्थापकों है । आज हिन्दू समाज इसी पापों के अन्तर्गत हो रहा है । जिस धर्मोपस्थापकों का मनु ने निषेध किया है, उसी का सर्वत्र प्रचार है ।

—पृ० ६६

“वेले में कुँडों, बहमातों की कुँडों करने के लिये मोका मिलता है । इन वेलों की दुर्दशा प्रचलित है । वहाँ बीमारी फैलती है, बीबा होता है, कुँड मरते हैं, कुँड भाग कर कोष में, वेलाओं में बीमारी फैले जाते हैं । टीका ही है । पाप का फल तो हीन लोक परित्याग होता ही है । वेले ही हमारे समाज में धर्म के नाम पर धर्म फैल रहे हैं । इन का यह पुनः के निवारण होना चाहिये, यह भारतीय-संस्कृति का विध्वंस स्वरूप बीबा रहेगा । एक ही मूर्ति बनाकर एक घर फल, पत्नी, पैसा पैकना, यह ही मूर्ती बूटता है । मनु ने बीबा की मूर्ति बना कर उसकी पुजा कीटि नाम एक करने वाला क्या बीबा से कुँड नाम उठा पायेगा ? क्या भारत माता की मूर्ति बूटने के भारत सन्तान हुआ है ? वालों में तो कहा है कि—

मूर्तिस्था काष्ठपाथस्तौ कुम्भस्वात्मनि देवताः ॥

काष्ठपाथस्तौ के ही मूर्तों के देव रहते हैं । पत्ति का ही भारमा ही ईश्वर है ।”

भारतीय संस्कृति पृ० ६२, ६३

सहं सर्वेषु भूतेषु भूतानामनुत्तिष्ठतः सदा ।

समचित्तव मां मार्गः कुम्भोऽर्थोऽर्थोऽर्थोऽर्थः ॥

ओ मां सर्वेषु भूतेषु अन्तर्गतपाथस्तौ ईश्वरम् ।

द्वितीयार्थी भवते मोक्षार्थं भक्त्या च भूतेषु सः ॥ भावगत पृ०

जब मैं सभी मूर्तों में विद्यमान हूँ तो उन मूर्तों की जोड़कर मूर्ति में मेरी पुजा करना तो विद्वम्बना भाव है । ओ सभी मूर्तों में रहने वाले केरा सनावर

अपमर्शो मिमर्शो निमग्नस्तु क्त्वाऽपि विप्रो ।

कारयन्ति हि मे आन्धे ते दिवाकरमातिव्रताः ॥

मथिय ५- ब्रह्मार्पणं १ अ० १४१।११

एवं ब्रह्माहमी देवा पुत्रमिन्द्रा दिवाकरम् ।

शक्तिकन्तो बहुबुद्धे सर्वबीमां प्रयत्ने ॥

इन दोनों ओकों का भाव ऊपर मिल गया है । इसी प्रकार काचनत पुराण में विष्णु की की महिमा और तब, ब्रह्मादि देवताओं की विष्णु की आज्ञा में चलने वाला कहा है :—

ओहावमीव द्विपदे बहुत्वचः ॥ मानस ६।१४

शिर्वालिन महिमा

शिर्वालिनं सङ्कुसुम्य बीज्यां देवतापुत्राहते ।

स राजा सहदेवोऽप्य दीरघं नरकं गच्छेत् ॥

विष्णु पुराण उत्तर अर्ध अ० १२।१३

पार्थिव शिर्वालिनं च विप्रो यदि न कुर्वयेत् ।

स पार्थिव नरकं घोरे मूलमोहं मुदावहन् ॥

शिर्वालिन पुराण वि० अ० १२।२६

शिर्वालिन की छोड़कर की काम्य देवता की उपासना करता है वह राजा देव उद्धित दीरघ नामक नरक में जाता है ।

ब्रह्माण्ड यदि पार्थिव शिर्वालिन की पूजा न करे तो वह कहीं से सने चौर नरक में जाता है ।

शिर्वालिन लिम्बा

.....सूर्ये निप्रसन्न कोलमः ।

शिर्वालिनार्चनरतः शिर्वालिनस्तु निमित्तः ॥

मथिय० मज्झिम पूर्व अ० ४।५८

सूर्य में उपासक निर ही उत्तम है । शिर्वालिनार्चन रत तब निर निमित्त है ।

इसी प्रकार पुराणों में वन तब सर्वत्र परस्पर देवी-देवताओं की पूट के परिछाव में उपासकों की पूट का वर्णन है ।

प्राद्वि पंक्त्यात्मयर्चनं वरम् ।

(३०) एकेश्वरवाद

देवी में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन है । और एकेश्वरवाद का वर्णन बड़ा बड़ा है । अहम्बा की पीरानुसार का नरक का कारण बताया है ।

ये इसी प्रकार करके हुए भूति पूजन का नवम और अंतिमोपायना का अन्त किया है । अतः भूति पूजन का और आनन्दमात्र ही जीव अन्त है ।

काशी जाम्नाथ सरस्वती प्रकाशनी ने काशी का कोई विद्यालय स्थापित करने में नहीं आया। देहाती ने १० लाख काशी गली जाकर एक गली भी गलियारा के पक्ष में उपस्थित न कर सके।

(५४) अतिरिक्त पाठ्यपुस्तक

म० राधाकृष्णन् जी धार्मिक अन्धकार निवारण के कार्य सहित एक सेवा पर उत्कृष्ट आनुवीय (आचार्य) ने अपने चेतना प्रसारण १९५९ के विशेषांक में दक्षिण की वेदी का अन्धकार मिटाना सिद्ध करने का विशाल प्रयास किया है । उन्होंने निष्कर्षात् दर्शाते हैं कि आर्ये इस सत्य में स्वीकार कर ही लिया कि—

“न तस्य प्रतिमा अस्ति” वेद का यह वचन सर्वथा सत्य है । कारण कि जो नरमेवमर निराकार, साकार, सर्वव्यापी, सर्व रक्षित है उसकी वास्तविक मति कीट बना सकता है ? जोसे बना सकता है ?

समय योजना ११५६ पृष्ठ ४३

इस संदर्भ में साबनेली राजबहादुर ने कहा कि ईश्वर की निराकार के साथ साकार मानकर भी तब ही कहा कि उसकी कृति कोई भी मनुष्य किसी प्रकार से नहीं बना सकता । तब ही कृतिपूजा का अन्त हो नहीं सकता । पुनः साबनेली राजबहादुर ने कहा है । साबनेली राजबहादुर के अनुसार वे भी साकार मान नहीं है ।

पुनः इस सीढ़ की इसी संज्ञा में स्पष्ट करते हुए धारणा लिका है कि—

“साम ही यह सब भी समझ ही साथ है कि जगत् की कोई भी कसौटी उसकी प्रतिमा के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं है। बुद्धिबुजा की वेद विप्लव कहने वाले विद्वानों की बुद्धि पर कस खाता है। जिस वेद में वनस्पति, पौधपत्र, वृक्ष, पशु, पक्षी, नैतिकता, लाल, काल, काल, कुबेर, विष्णु, शिवादि की उपासना की बात कही गई है। यह वेद बुद्धिबुजा का निषेध कैसे कर सकता है ? समस्त कसौटी एक प्रकार से प्रतिमा ही तो है।”

9-11-2014 2

शाहपुर ग्रामासीन सङ्घोदय ने केद धार्मिक विधि से पशु होती ही इतना धारमिक संदर्भ न लिखते । केदों में ईश्वर की कही शाकार नहीं लिखा, और न ही केदों में जड़ पदार्थों की सवासना का वर्णन है । जड़ पदार्थों का सनुपवीय करना ही केदारिमय विज्ञान है । कामेजवा की उत्पत्ति करण प्रकृति से ईश्वर

द्वारा हुई है। आज कारखाना बहुरि की बला में झुंकार नहीं कर रहे हैं जो वेद प्रतिपादित है। यहाँ की कुम्हार की प्रतिमा मानना यही साधका कार्य है ? जब कि यहाँ का उत्पादन कारखाने पिट्टी जलाने में क्यों से स्थित मौजूद है। यतः वेद में भी प्रकृति की प्राकृतिक वधाओं की बहुरि के सर्वथा विरुद्ध माना है। देखिए—

अन्यथाः प्रवृत्तिभिः वेदेषुमुत्तिष्ठताम् ।

सतो मय इव ते तपो य न संसृज्यारताः ॥

यजु० ४०।२

जो लोग कारखाने की बहुरि की उपेक्षा करते हैं वह पौराणिक काल के लोगी बनते हैं और जो लोग कार्य करते हैं प्राकृतिक वधाओं के अनासक्त हैं वह उत्तरी की आधिक पौराण्य सम्प्रदाय के लोगी बनते हैं।

यह वेद की आज्ञा है यतः वेद में वह वधाओं की उपेक्षा का स्पष्ट निषेध मौजूद है। आज अनेकलिमात्र के लोगों की समझने में दूत कर रहे हैं। ईश्वर अपने कुलों के विरुद्ध कथानि कोई कार्य नहीं करता। यतः यह निम्ना है कि—

“यदि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो उसमें अवतार देने का अभाव उसे सर्वशक्तिमान् नहीं बनने देगा।”

अथर्व वेदना पु० २३ काण्ड २

सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का एकदेशगुण शरीर में अन्तःधारण करना अवश्य है और अवतीत्यावतार का दोष भी है यतः वेद अवतार में मूर्ति नहीं दी है कि—

त सर्वमानसु अथकायमस्तुमहतामिह सुहृन्महामिहम् ।

यजु० ४०।२

यह अनेक परमात्मा सर्वशक्तिमान् है, यह अपने कामों में किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता। यह शरीर रहित है यतः कोई कुली तथा नर-नाड़ी के सम्बन्ध से भी संबंध रहित है। यह बृद्ध स्वयम् है और बाकी से कुछ कभी नहीं बन सकता। सर्वशक्तिमान् का अपने अपने कुलों के विरुद्ध कार्य करना नहीं है प्राणुत अनुकूल कार्य करता है।

अतः प्राकृतिक बहुरि के विरुद्ध की बुद्धि पर अस्त न कार्य प्रत्युत अपने ही बुद्धि पर बना करें।

वेदों में इन्द्र विष्णु, ब्रह्मादि कोई वह देव उत्पन्न नहीं बताये गये अतः वह नर ईश्वर के भी पौराणिक नाम हैं, विरुद्ध अनासक्त वेद में ही है—

इष्टं मिथं च पुत्रपौत्रसमृद्धौ दिव्यः सा सुमहती वक्ष्यमान् ।

एवं सन् विद्वान् बहुधा कथन्वन्नि वरं मातरिस्त्वामाहुः ॥

श्रु० १।१६भा०४६

परमेश्वर एक है । उसे विद्वान्, लोच इन्द्र, मित्र, वरदा, शक्ति, कर्म-मातरिणा आदि नामों से जान करती हैं । बहुत सब उसके पौत्रिक नाम हैं । ईश्वर का निज नाम केवल श्रीरम् है । वह अमरच वेद में लिखा है ।

एक साधक इन्धेक लक्षों का उत्तर देना भी क्षमता कर्तव्य समझता है । इन हेलाचामाओं का नाम ही साधने विज्ञान रक्षा है । बाद रक्षिते कि विज्ञान का नाम दे देने से ही पुनिपुत्रा वैज्ञानिक कमी भी नहीं मानी जा सकती । साथ माता-पिता साधारण की पुष्टिमान् बालक के उनके स्वास् से वर्तमान जहाँ की उपासना की वास्तवीय सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं । वह भी साधने साधुदोष होने मात्र का ही परिणाम है ।

लघु है कि माता-पिता, साधारण आदि पुरुषों की सेवा ही हीनी ही चाहिये । क्योंकि वे इस सेवा के अधिकारी हैं । सेवा स्वीकार करते हैं । उसके लघु-लघु होते और प्रलय होकर हजारों समा करते में समर्थमान् होते हैं । किन्तु वह पदार्थों में समय काल तक भी वह चैतन्य विविध पुरुष कदाचि न भा सकेगा ।

मनु धर्मशास्त्र में माता की पुत्री की पुत्रि, पिता की प्रजापति की पुत्रि और साधारण की ज्ञान की पुत्रि कहकर उनकी सेवा का वर्णन किया है किन्तु वह पदार्थों का उपरोक्त तो उनके समायोग्य प्रयोग में ही है । वही केवी में ब्रह्मदे श्रीपथ प्रसंगों का अधिप्राय है । साधने साधने लिखा है कि—

मोक्ष, वरदा, वर, धाम्य, दुर्लभ केजली आदि यह सभी परमार्थ पुष्टिमा ही ही हैं । क्या इनकी पुत्रा नीच नहीं करता ?से कर्म, वरदा, धाम्य, वरदा, वरदा, कर्मिका, कर्मदेन आदि सभी ही कावच पर रक्षाही की पुष्टिमा है । फिर पुष्टिपुत्रा का निर्देश करने वाले स्वयं क्यों इनकी उपासना करते हैं और दूसरों की भी ऐसा करने के लिये विवश क्यों करते हैं ? क्यों कहते हैं कि उनके लघु या उपरोक्त—पुत्रि की उपासना अवश्य ही की जाय ।

अथ चैतना पृ० ४२

यों साधुदोष की का विज्ञान सामर्थ्य का दया है । साथ पुष्टिपुत्रा की रक्षाही की पुत्रि काल रहे हैं तो साधने देवता की भिद्री की पुष्टिमा साधने जाकर ईश्वर की व पि कहलाने के कदाचि योग्य नहीं है । मोक्षन साधा जाता है,

कल्प पड़ने जाते हैं। पर सामान्य से गलतियों का कम-विकल्प होता है। इन प्रकार दुःखद, बेचनी घाति सभी बस्तुओं के द्वारा अपना-विशेष यदि व्यवहार होता है। किन्तु यहाँ रीति करके और इन पर पुष्पादि चढ़ा कर इनके आत्म में बोध प्राप्ति और वाच शब्दा का विद्यमान कोई भी नहीं मानता जैसा कि साधु मानते हैं। अतः यहाँकी उल्ला उपदेश के विषय है।

[illegible]

है कि:—

६ वि:—
 'साय हो मुक मोर धी' का अर्थ 'मुक हो' है।
 'साय' के स्थान पर 'मुक' का प्रयोग 'मुक हो' के अर्थ में
 है। इसका अर्थ 'मुक हो' है।

हैं और यह भी अनेकाने केतन अधिक व्यक्ति एवं व्यक्तिगत हीना है । ऐसी दशा में जीव के प्रचार से वा जगत्सत्ता के अद्भुति में वैतन्य का कुछ मात्रा चाहिये न कि केतन जीव में अद्भुत का । वास्तविकता यह है कि जब केतन जीव अपनी जगत्सत्ता द्वारा अद्भुति में वैतन्य की भावना करता है तभी उस भुक्ति का उभाव जीव पर पड़ता है । उसके पहिले तो भुक्ति उसके लिये भी सामान्य अद्भुत पदार्थ ही रहती है ।-----इसमें कोई शक नहीं कि सर्व-व्यापक निराकार परमेश्वर की वास्तविक भुक्ति नहीं बन सकती । पर साथ ही यह भी सत्य है कि ऐसे परमेश्वर का वास्तविक वर्तन, चिन्तन, मनन अथवा जगत्सत्ता जीव भुक्ति का व्यापार तो प्रतिभा, प्रतीक अथवा प्रत्यय का सहारा बिदे बिना नहीं बन सकता । इस प्रकार सत्य की ओर से अद्भुत भुक्ति केना सत्यकर पूरा होती ।" अथवा केतना पू० ४२, ४३

शक्तिर बहुभुवन के लेख में यह सत्य सर्वत्र बहती व्यापार हीना है । एक ओर तो अत्य सर्वव्यापक निराकार परमेश्वर की भुक्ति वास्तविक कथन बननी सर्वत्रा सत्यतम मानते हैं और भुक्ति की सामान्य अद्भुत पदार्थ हीना लिख रहे हैं । पुनः इसमें वैतन्य की भावना करता भी प्रतिपादित करते हैं । अतः तिन तक कोई भी पुकारी अद्भुत भुक्ति में वैतन्याभावना नहीं ला सका और न साथे कभी अद्भुत भुक्तियां केतन होती । अथवा और इनकी ओरी न कर सकते । इनके साथ और कहने न उतार सकते । पुनः भुक्ति और उसकी पूजा मनी-वैज्ञानिक सत्य कैसे हुआ ? विज्ञान का नाम से देने से क्या वह वैज्ञानिक तथ्य बन जायगा ? अथवा अतः अर्थों में अतः भुक्तियां नहीं और बनाई जाती हैं । उनके निर्माताओं की कोई भी वैज्ञानिक नहीं मानता । विज्ञान सिद्ध करतु का कार्य भी बहुत होता है किन्तु भुक्तियों का कुछ भी वैज्ञानिक उपयोग नहीं है । इनकी पूजा की विज्ञान सिद्ध नहीं है । बड़ी, पहिलेवा अतः बनाना, भुक्तियों की मुक्तता, जगत्सत्ता, सत्यी-सत्यी से बचने के लिये सत्य-सत्य सत्य पहिलेवा, साधु-सत्यी से सत्यतम, इनके विज्ञान सत्यतम अतः सत्यी कार्य विज्ञान विरुद्ध है । नहीं वैज्ञानिकतम है । वैज्ञानिकता इसमें लेख साथ भी नहीं ।

अद्भुत की जगत्सत्ता से अद्भुत अतः में भी क्या सत्य हो सकता है ? जब कि महानुभव सत्यतम के लिये से साधु-सत्यी ने सत्यी-सत्यी भुक्ति-सत्यी की भुक्ति की हर लिखा और यह भुक्ति से सत्य मानते सत्य कर सत्य-सत्यी की अतः सत्य सत्य और हो-हो सत्य में उनकी सत्य-सत्यी की सत्यी के साधु-सत्यी में सत्य सत्य । और-सत्य के सत्य होकर सत्य-सत्य की की भुक्ति सत्यी तक

काशी कुद के निकलने का नाम नहीं लेती । उसे बता भी नहीं कि भारत अब स्वतन्त्र और स्वाधीन हो गया है ।

यही वह बात कि बेतम बीम की बेतमता का प्रभाव बड़ मुठियों पर पड़ना चाहिये तो उसमें भी कोई सन्देह नहीं कि वैदिक यम के वैतम्य अन्त विद्वान्ओं के सामों की बेतमता का प्रभाव बड़ मुठि लोगों में बेतम्य का संचार कर रहा है कि वे राहू रक्षा के निवेदनसंकेत ही । सभी ही काशी के विद्वान्ओं के यमन मुठि ही भोषण की थी । अन्ति सत्तरवें के वेत भाग्य की काशी सिद्धि परिचर के प्रभाव ने अन्तिमस्तिक माना वा बीर अब स्वी आति के वेद पढ़ने पढ़ाने के सामें वैदिक सिद्धान्त की परिपुष्टि काशी सिद्धान्तकी ने करती ही । यह बड़ता और बेतमता का आत्मन्सारिक मान्य ही सकता है ।

सर्वांगान् मुठिपुत्रा और विज्ञान परस्पर विरुद्ध बातें हैं । तथा पुराणों में भी मुठिपुत्रा का अन्त संरन मौजूद है । पुराणों के मुठि पुत्रा संरन के प्रमाणों के सामें आधुनीय की का मनोविज्ञान कभी नहीं उठर सकता । मुठि पुत्रा ईश्वर प्राप्ति की सीढ़ी कहानि नहीं । यह एक लार् है जिसमें निरन्तर आत्मन्प्राप्ति कहता चूर ही रही है । अतः यन् राधाकृष्ण की ने हीन ही तो सिखा है कि—

(१) कुत परस्त्री का है वह उत्तूर दिखला देनी ।

कुद तरासा है कवर नाम सुवा रसा है ॥

(२) मेरे हाथों के तराके हुए कवर के यम ।

आज मन्दिर में भक्तान् बने बैठे हैं ॥

वेद में परमेस्वर का नाम स्वर्गधु भी है । जिसका अभिप्राय है कि परमात्मा स्वर्गमेव है उसको किसी ने बनाया नहीं है । स्वर्गधु के बिने कदही में सुवा अन्त आत्मा है । जिसे बनाया नहीं जाता वह स्वर्गमेव पुरनकुद है । अतः तराके हुए कुत का नाम सुवा रखना सुवा की सुर्ग का मनमान करना है ।

दामदर आनातीष्ठ ने जो बेर सिखा है कि—

कुत निमाकल का है वह बकला निगला देनी ।

स्वाह कर्जों की है वेद न कुरा बना रसा ॥

इस बेर में वह यम कहाँ ? इसके बदले में मैं प्रविष्ट नमादर यमों नेवा स्वर्गीय की राखनारायण बदमान के “अक्षरार काम” के अन्तिम कुद पर जिसे यमे एक बेर का सिखना पराप्ति समझता हूँ । यह बेर निम्न है —

गुनहे कमिस्त क्या है ? गुना में सरावती करना ।

कुनों को घर सुखना, मिदुमिदुना, सावनी करना ॥

कर्मों में राव-रावना सुखाना और वं- वीराना जानकी दोनों समान
एकी गेहाली में सुनिगुना के विरुद्ध अब भीय कनरी हुए एक प्रकार से चारों
समय के राव एकीगुन होकर कहा कि:—

ओ बोले तो रावना !

वैदिक धर्म की अब ॥

अब सुन गहनि दयानंद

रावनाली की अब ॥

॥ समाप्त ॥

समस्त पौराणिकों को शास्त्रार्थ का चैलेख

सर्वसमाज निम्न विषयों पर विचार के लिए समस्त
पौराणिक कवी को निमन्त्रण देता है—

१. कृति दूना वेद विरुद्ध है ।
२. अकालवाद वेद सम्मत नहीं ।
३. वर्तु व्यस्तक कथ से नहीं बर्त से है ।

जिन्हीं भी सर्वसमाज के संबंध से सम्पर्क कर निम्न
व समय निश्चित कर सकते हैं ।

जैकधरा, मुद्राणि

—आदि समाज (आचार्य महाराजी)

मुद्रक : आदमी बीच रोड, एन-५ स्टोर फोलाज चिकन सेन्टर, नई दिल्ली-४८

